

बाल जीवनी माला

# डारविन



पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड

नई दिल्ली

पहला हिन्दी संस्करण
जनवरी, १९५७

बंगला में देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय
द्वारा संपादित

लेखक

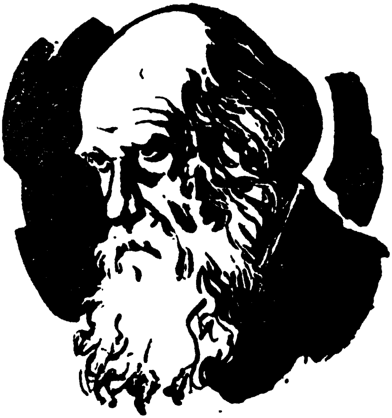
अशोक घोष 

अनुवादक

युगजीत नवलपुरी

मूल्य डेढ़ रुपया

डी. पी. सिन्हा द्वारा न्यू एज प्रिंटिंग प्रेस, आसफ अली रोड, नई दिल्ली
में मुद्रित और उन्हीं के द्वारा पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड,
नई दिल्ली की तरफ से प्रकाशित।



डारविन

# एक

एक था लड़का ।

स्कूल में उसका मन जरा भी नहीं लगता था । मौका पाते ही वह पिंजरे को पारकर निकल भागता ।

पिंजरा माने वही बोर्डिंग स्कूल, जहां उसके बापू ने उसे पढ़ने-लिखने के लिए भेजा था । बोर्डिंग स्कूल में कभी-कभी ऐसे मौके आ ही जाते, जब बाहर निकलने की सुविधा मिल जाती । सुविधा मिलते ही वह लड़का घर की ओर रवाना हो जाता । स्कूल से उसका घर कोई मील भर का रास्ता पार करने पर था ।

इतना 'घरमुंहा मन' क्यों था उस चार्ल्स का ?

चार्ल्स का मन असल में घर पर नहीं, बल्कि घर की ओर जानेवाले रास्ते पर टंगा रहता था ।

स्कूल की पढ़ाई में मन क्यों नहीं लगता था ?

इसलिए कि उस स्कूल में जो भाषा सिखायी जाती थी, वह मरी हुई भाषा थी । उस भाषा में अब

कोई ग्रादमी बात नहीं करता। जिन देशों के इतिहास-भूगोल वहां पढ़ाये जाते थे, वे देश भी अब दुनिया के मानचित्र पर नहीं हैं। इनके अलावा एक क्लास ऐसा भी होता था, जिसमें कविता लिखना सिखाया जाता था। लेकिन उसमें रस का लेश भी नहीं था। बटलर साहब के उस स्कूल में मजा नहीं था। थी वहां कोई चीज़ तो बस बेंतों की धमकी थी।

ऐसी बात नहीं कि चार्ल्स बिलकुल ही बुद्धू लड़का हो। नहीं, बहुत सारी बातें समझता था वह। फांकीबाज भी नहीं था। कक्षा में हमेशा हाज़िर रहता।

मखमल जैसी हरी घास से ढंका मैदान। मैदान में भेड़ें चरतीं, गाय-गोरू चरते, सुअर चरते, भांति-भांति के जानवर चरते वहां। उनके भांति-भांति के रंग होते और भांति-भांति के रोयें होते उनकी देह पर। हो सकता है कि स्कूल के सब लड़के इन चीज़ों को बारीकी से न देखते हों। लेकिन चार्ल्स ज़रूर देखता था। बारीकी से जो कुछ वह देखता, उसे गांठ बांधकर रखने की कोशिश करता।

उस मैदान के छोर पर थी एक नदी। नदी किनारे था एक वन। वन में नाना जाति के पेड़ थे। भांति-

भांति के फूल खिला करते थे वहां। न जाने कितनी तरह के फल लगते। चार्ल्स इन सारी चीज़ों को देखता हुआ भटकता रहता। वह देखता कि पेड़ यद्यपि एक ही जाति के हैं, फिर भी ऐसा जान पड़ता है कि वे सब एक जैसे नहीं हैं। कहीं किसी के फूल किसी और ढांचे के हैं तो किसी के फल किसी और बनावट के। उसी जाति के पेड़ अगर जंगलों में उगे-उपजे हैं तो उनके स्वाद और उनकी गंध का क्या पूछना! ओह, कितने मीठे फल होते हैं उनके! कितनी मोहक सुगंधि होती है उनकी!

वन में न जाने कितनी तरह की चिड़ियां थीं। भांति-भांति की चिड़ियां। जाति-जाति की चिड़ियां। रंग-बिरंगी बहुत-सी तितलियां। अजीब-अजीब आकारों और अजीब-अजीब स्वभाओं के कीट-पतंगे।

ये सारी चीजें वैसे तो सभी लोग देखते हैं। लेकिन देखते हैं ऊपर ही ऊपर। मुग्ध होकर देखते रह जाते हैं।

चार्ल्स भी मुग्ध होकर देखता। पर वह देखता एक-एक बात को बड़े ध्यान से। एक-एक बात को खुरच-खुरच कर देखता। वह देखता, पर केवल देखने के लिए नहीं, सीखने के लिए भी देखता। जो बारीक से

बारीक अंतर उनमें होता, उसे भी वह ध्यान में रखता। कुछ भी नया अगर दिख जाता, किसी भी अद्भुत चीज़ पर नज़र पड़ जाती, तो उसे जेब में डाल लेता और घर ले आता। कीड़े-मकोड़े, तितली-पतंगे, सीप-कौड़ियां, तरह-तरह के पत्थर, खनिज वस्तुएं, धातुएं, सील-मुहर, सिक्के-मुद्राएं—सभी कुछ!

और फिर, वह लिखता। सारी बातें यों तो याद रखी नहीं जा सकतीं न! इसलिए जो भी नयी बात सूझती वह लिख लेता। इस तरह पोथियों पर पोथियां लिख डालीं उसने।

स्कूल की किताबों में चार्ल्स का मन नहीं लगता था। फिर भी मन लगाना ही पड़ता। स्कूल की किताब पढ़ना ख़तम करके चार्ल्स कोई और किताब खोलकर बैठ जाता। बाहरी किताबों में उसका मन डूब जाता। पढ़ते-पढ़ते वह तन्मय हो जाता।

ये किताबें—ये बाहरी किताबें—कौन सी थीं? ये थीं जीव-जन्तुओं की किताबें, पेड़-पौधों की किताबें, देश-विदेश घूमनेवालों की किताबें। चार्ल्स की सबसे मनपसंद की किताब थी एक: "दुनिया के आश्चर्य" ("वनडर्स आफ़ द वर्ल्ड")। वह अक्सर इसी किताब को खोले बैठा रहता। संगी-साथियों को

इस किताब की बातें सुनाया करता। इस किताब को पढ़कर चार्ल्स का मन होता कि वह भी जहाज़ पर बैठकर दूर देशों की सैर को निकल जाय।

आख़िर एक दिन उसकी यह इच्छा पूरी भी हुई।

इन सब किताबों के अलावा एक और किताब थी, जिसे पढ़ना चार्ल्स बहुत पसंद करता था। वह किताब थी उक़लैदिस की ज्यामिति। हां, शेक्सपीयर के ऐतिहासिक नाटकों को पढ़ना भी उसे बहुत पसंद था। बोर्डिंग स्कूल की बड़ी खिड़की के पास बैठे-बैठे शेक्सपीयर के नाटक और स्कॉट तथा बायरन की कविताएं पढ़ते वह घंटों गुज़ार देता। इसमें ज़रा भी थकान नहीं होती थी उसे।

मछली पकड़ना भी उसे बहुत अच्छा लगता था। नदी या तालाब के किनारे बंसी डाले वह घंटों बैठा रहता।

और शिकार का क्या पूछना? शिकार की बात चलते ही चार्ल्स को मानो पंख लग जाते।

उसपर शिकार का नशा सवार होता, तो रात को सोते समय जूते-टोपी सिरहाने रख लेता, ताकि सुबह आंखें खुलते ही बंदूक कंधे पर लटकाकर निकल जा सके।

एक और शौक़ था उसे। पैदल या घोड़े पर सवार होकर अकेले घूमना-फिरना। इंगलैंड में वेल्स नामक एक जगह है। वहां की प्राकृतिक छटा देखते ही बनती है। एक बार घोड़े पर सवार होकर चार्ल्स वेल्स की सरहदों का चक्कर लगा आया। उस भ्रमण की याद चार्ल्स जीवन भर नहीं भुला सका।

एक मज़ेदार बात और बता दूं।

एक बार तो चार्ल्स के लिए स्कूल जाना ही असंभव हो गया। क्लास में उसे देखते ही लड़के चिल्ला उठते: "यह रहा गैस! यह रहा गैस!" चार्ल्स परेशान हो उठता।

क्या बात थी? इसके पीछे एक कहानी है।

चार्ल्स के एक बड़े भाई थे। वह कालेज में पढ़ते थे। पता नहीं उनके मन में क्या झक्क उठी कि एक बार उन्होंने अपने बग़ीचे में, औज़ार-पाती रखने के घर में, एक छोटी प्रयोगशाला सजा डाली। आला ठाट से सजी-धजी एक रसायनिक प्रयोगशाला। उसमें वह भांति-भांति के रसायनिक प्रयोग किया करते थे। कभी वह गैस बनाते, कभी किसी पदार्थ में कोई पदार्थ मिलाते और तरह-तरह की यौगिक रसायनिक वस्तुएं तैयार करते।

चार्ल्स के भाग्य जागे। भैया ने उसे काम में हाथ बंटाने के लिए बुला लिया। हाथ बंटाना माने कोई बड़ा काम नहीं, बल्कि यही छोटे-मोटे टहल-टिकोरे : 'यह उठाओ !' 'वह रखो !' 'यह लाओ !' 'वह ले जाओ !' आदि-आदि। चार्ल्स इतने में ही कृतार्थ हो उठा। वह फूला नहीं समाया। भैया उसे अपने हाथों काम न भी करने दें, तो अपनी आंखों से वह सारे गोरखधंधे को देख तो सकता ही था ! इसमें कोई शक नहीं कि भैया अगर छोटे भाई का उत्साह और आग्रह देख लेते तो अपने हाथों काम करने की उसे इजाजत भी दे देते। ऐसा अनेक बार हुआ भी। घर के और सभी लोग गाढ़ी नींद में सोते रहते और ये दोनो भाई प्रयोगशाला के अंदर बहुत रात गये तक प्रयोग करते रहते, यानी गैस बनाते रहते ! मुंहा-मुंही बात फैल गयी। स्कूल के लड़कों को चिढ़ाने का मौका मिल गया। वे उसे देखते ही कहते : "यह रहा गैस, यह रहा गैस !"

बात हेडमास्टर साहब के कानों तक पहुंची। उन्हें यह सब बातें पसंद नहीं थीं। भरे क्लास में उन्होंने लड़कों के सामने चार्ल्स को फटकारा : "बावला कहीं का ! पढ़ना-लिखना छोड़ अंट-शंट कामों में समय बरवाद करता है ?"

बच्चे की मति-गति देखकर पिताजी ने भी पता नहीं क्या सोचा कौन जाने? उन्होंने चार्ल्स का स्कूल जाना छुड़वा दिया और एडिनबरा के विश्वविद्यालय में डाक्टरी पढ़ने को दाखिल करा दिया।

# दो

दार्शनिक इराज़मस डारविन के पोते, सुप्रसिद्ध डाक्टर रॉबर्ट डारविन के सुपुत्र, चार्ल्स डारविन सन १८२४ में डाक्टर बनने के लिए एडिनबरा चले।

आंखें मूंदकर मन ही मन हम सवा सौ या डेढ़ सौ बरस पहले के इंगलैंड में, चार्ल्स डारविन के लड़कपन और जवानी के दिनों के इंगलैंड में, जा पहुंचें तो हम देखेंगे कि पूरे देश में उत्तेजना और उथल-पुथल मची थी।

उत्तेजना ?

यही कि : जानना चाहिए। लोगों ने निश्चय कर लिया कि अब सब कुछ जान कर ही दम लेंगे। जल-थल और आकाश के सारे भेद जान लेंगे। घर-बार छोड़कर, समुद्रों को लांघकर, नदियों, पांतरों, मरुभूमियों को पारकर सब-कुछ उलट-पलटकर समझ-बूझ लेंगे, हर चीज़ का बारीक से बारीक भेद खुरचकर निकाल लेंगे।

आदमी की जानकारी की सीमा के बाहर कुछ भी नहीं बच पायेगा।

इंगलैंड में यह नशा किस लिए था ?

इसलिए कि उन दिनों का इंगलैंड पूरी दुनिया जीत लेना चाहता था। गंवई-गंवार इंगलैंड अब शहरी इंगलैंड बन चुका था। शहरों में आसमान तक सिर उठाये बड़े-बड़े कारखानों की चिमनियां उठ खड़ी हुई थीं। कहीं सूती कपड़े का कारखाना था, तो कहीं ऊनी कपड़े का। कहीं लोहे-इस्पात का, तो कहीं रेल के इंजन बनाने का। कहीं मांस का, तो कहीं जहाज़ बनाने का।

मशीनों के चक्के अविराम घूमते रहते और अविराम यही शोर मचाते रहते: हमें चाहिए! और चाहिए! और रसद चाहिए! और खूराक चाहिए। और रुई चाहिए, और ऊन चाहिए। कपड़ों के थान बना-बनाकर हम पहाड़ों जैसे ढेर लगा देंगे। हमें और लोहा दो, और इस्पात दो! हम बहुत सारी रेलगाड़ियां, बहुत सारे जहाज़ बना डालना चाहते हैं!

मशीनों की मांगों का न कोई ओर था, न छोर।

इसीलिए इंगलैंगवालों को अपने देश के चप्पे-चप्पे की खाक छान डालना पड़ी। वन-जंगल, पांतर-पहाड़, नदी-समुद्र, सब ढूंढ़ डाले। लोगों को अंधेरी खानों में

उतरना पड़ा। अतल समुद्र की छाती पर पालें उड़ानी पड़ीं। "देखो-देखो ! ढूंढ़ो-ढूंढ़ो !" की गोहार मच गयी। "देखो-देखो ! नज़र गड़ाकर देखो ! जहां से भी, जो भी रसद कल-यंत्रों के लिए मिले, उठा लाओ।"

उन दिनों इंगलैंड के सिर पर नयी-नयी बातें जानने का भूत सवार था। नयी-नयी बातें जानने का, जान लेने के बाद उन्हें बस में करने का और हासिल करने का, फिर उन्हें अपने काम में लाने का। मिसाल के लिए, ऊन की मांग बढ़ी। ऊन के लिए भेड़ों की तादाद बढ़ी। भेड़ें चरें कहां ? खेती की ज़मीनें घेर-घार कर चारागाहें बनीं। अब जांच-पड़ताल शुरू हुई कि किस-किस जाति की भेड़ों की देह पर अधिक ऊन होता है। बस, छांट-छांटकर उन्हीं जातियों की भेड़ें रखी जाने लगीं। इन जातियों का वंश बढ़ाने के उपाय किये जाने लगे।

पूरे देश में यही मंत्र जपा जाने लगा : देखो। जानो। देख-जान कर काम में लगाओ !

शहरों का यह हो-हल्ला अभी गांवों में नहीं पहुंचा था। गांवों में जीवन अभी भी पुरानी चाल से चल रहा था। हां, गांव का छोकरा चार्ल्स, गांव में रहते हुए भी, अपने स्वभाव के कारण देखने-जानने की इस

धूम-धाम में खिंच आया था। मास्टर की धमकियां, लड़कों की टिटकारियां और बापू का उदास चेहरा—कोई बाधा उसके स्वभाव के खिंचाव को नहीं रोक सकती थी।

# तीन

विश्वविद्यालय के नगर एडिनबरा में आकर इस लड़के पर डाक्टर बनने की धुन सवार हुई।

आज-कल की तुलना में डाक्टरी-विद्या उन दिनों बहुत पिछड़ी हुई थी। अपने हाथों जांच-परख कर सीखने की कला अभी शुरू नहीं हुई थी। चुपचाप बैठे-बैठे अध्यापक का एकसुरा और नीरस भाषण सुनना ही विद्यार्थियों का काम था। हाथों की डाक्टरी कला सीखने के नाम पर कुछ करना पड़ता था तो यही कि सामने खड़े-खड़े रोगी की चीड़-फाड़ देखते रहो। डारविन दो बार चीरफाड़-घर में घुसे। अब तक क्लोरोफ़ार्म का आविष्कार नहीं हुआ था। चीर-फाड़ की असह पीड़ा से रोगी चीख-चीख उठते थे। एक बार एक छोटे लड़के के आपरेशन (चीर-फाड़) के समय डारविन भी उपस्थित थे। लड़के का मर्मभेदी चीत्कार सुनकर डारविन खड़े न रहे सके; बेचैन होकर वह उसी

क्षण चीरफाड़-घर से निकल भागे। तीसरी बार उन्होंने उस ओर नहीं झांका।

डाक्टरी पढ़ने में उनका मन नहीं लगता था, लेकिन पिता जी का मन तो रखना ही था। इसलिए डारविन नियमित रूप से क्लास में उपस्थित रहते थे। सच पूछो तो उनकी असली पढ़ाई—उनका असली क्लास—कॉलेज से बहुत दूर, समुद्र के किनारे, मछेरों की बस्ती में, हुआ करता था। मछेरे शंख-सीप आदि के लिए समुद्र में नावें डालते, तो उनसे दोस्ती गांठकर डारविन भी मछेरी-नावों (ट्रालरों) पर जा बैठते। जाल में आये नाना जाति के समुद्री जीव-जंतुओं के नमूने अपने साथ लिये वह घर लौटते। घर लौटकर उन नमूनों को वह काटते-कूटते और अणुवीक्षण-यंत्र (खुर्दबीन) के तले रखकर उनकी बारीकी से जांच-परख करते।

एडिनबरा में डारविन को कई मनचीते मित्र मिल गये। वे भी उन्हीं की तरह प्रकृति-खोजी थे। इनमें से कुछ के नाम ये हैं: एइंसवर्थ—इनका अनुराग भूतत्व-विद्या में था; कोल्डस्ट्रोम—यह प्राणि-विद्या का शौक रखते थे; हार्डी—इन्हें वनस्पति-विज्ञान की चाट पड़ी हुई थी; ग्रांट—यह भी प्राणि-विद्या के शौकीन थे।

इन लोगों से बात-चीत और बहस-मुबाहसे में ही डारविन का बहुत सा समय बीतता था। वह अनेक नयी बातें सुनते, नयी बातों पर सोचते-विचारते और फिर उन पर लेख लिखते।

ग्रांट और कोल्डस्ट्रीम का झुकाव समुद्री जीव-जंतुओं की खोज की ओर ज्यादा था। अक्सर वे आवश्यक नमूने जमा करने के लिए समुद्र के किनारे जाया करते थे। डारविन उनका साथ कभी न छोड़ते।

उन दिनों एडिनबरा में एक समिति थी: 'प्लिनियन सोसायटी'। विश्वविद्यालय के एक तहखाने में ही इस समिति की बैठकें हुआ करती थीं। बैठकों में विद्यार्थी और अध्यापक प्रकृति विज्ञान के विविध विषयों पर लेख पढ़ते और इन लेखों पर बहस करते।

डारविन भी इस समिति के सदस्य बन गये। वह इसकी बैठकों में नियमित रूप से भाग लेने लगे। यहां उन्होंने दो-एक निबंध भी पढ़े।

डाक्टर रॉबर्ट डारविन निराश हो गये। उन्होंने सोचा था कि संभवतः इस लड़के की प्रवृत्ति वैज्ञानिक है। इसीलिए उन्होंने उसे डाक्टरी पढ़ने के लिए भेजा था। डाक्टरी भी तो एक विज्ञान ही है न!

लेकिन सब-कुछ देख-सुन लेने और धोखा खा

चुकने के बाद उन्होंने समझ लिया कि विज्ञान इस लड़के की प्रकृति से मेल नहीं खाता। अस्तु, उन्होंने फ़ैसला किया कि चार्ल्स कैंब्रिज जाय और वहां पादरी बनानेवाले कॉलेज में भर्ती हो जाय।

बड़ा अचंभा होता है यह जानकर कि डारविन ने इस पर कोई आपत्ति नहीं की। आपत्ति क्यों नहीं की यह सोचकर बुढ़ापे में खुद उन्हें हंसी आ जाती। कारण, एक दिन ऐसा भी आया जब पूरे इंगलैंड का पादरी-संप्रदाय डारविन के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ। लेकिन यह कहानी बाद में।

सन १८२८ में डारविन कैंब्रिज विश्वविद्यालय में दाखिल हो गये।

पिछले दो बरस जिस तरह एडिनबरा में कटे थे, कैंब्रिज में भी तीन बरस लगभग उसी तरह कटे। यहां भी कालेज के भाषण उसी तरह सीमित-संकुचित, वैसे ही ऊब-भरे और एकसुरे होते थे। यहां भी भाषणों में डारविन का मन न लगता। यहां भी पैदल या घोड़े पर देश घूमने या शिकार खेलने की बात उठते ही वह बेचैन हो उठते। यहां भी वैज्ञानिकों के घर आना-जाना, बातचीत और बहस-मुबाहसे करना जारी रहा। यहां भी विज्ञान-विषयक भाषणों को सुनने का वही

सिलसिला जारी रहा। यहां भी वह विज्ञान की नयी-नयी किताबें पढ़ते रहे, लेख-प्रबंध आदि लिखते रहे, वनों-जंगलों में घूमते रहे, कीड़े-मकोड़े और तितली-पंतगे जमा करते रहे।

कीड़े पकड़ने की एक कहानी याद आ रही है।

एक दिन डारविन जंगल में घूम रहे थे। एक अजीब तरह के कीड़े पर नज़र पड़ गयी। एक पर नहीं, बल्कि एक जोड़े पर। दोनों हाथों से दोनों को पकड़ लिया। इतने में एक तीसरा भी उड़ता हुआ आ पहुंचा। इसको भी छोड़ना ठीक नहीं था। लेकिन पकड़ा जाय तो कैसे? दोनों हाथों में तो एक-एक कीड़ा पहले से ही था। डारविन ने किया यह कि दाहिने हाथ वाले कीड़े को मुंह में रख लिया और तीसरे कीड़े को पकड़ने लपके। लेकिन तीसरा इतनी आसानी से पकड़ में आनेवाला नहीं था। वह भी चालाकी खेलने लगा। इधर मुंह के अंदर का कीड़ा ज़हर डालने लगा। जीभ जल उठी। यंत्रणा से व्याकुल डारविन ने मुंह के कीड़े को थूक दिया। तब तक मौका पाकर तीसरा कीड़ा भी लापता हो गया।

इस तरह के संग्रह के पीछे तो वह दीवाने थे ही, ऊपर से दो नये शौक़ों का और चसका लग गया।

एक शौक़ था : चित्रालयों में जाकर चित्र देखने का, एकाध चित्र खरीद लेने का और चित्रों के बारे में लिखी गयी किताबें पढ़ने का। दूसरा शौक़ था : गाने-बजाने के जलसों में बैठकर संगीत सुनने का।

यहां हेनसलो वाली बात बता देना ज़रूरी है। वरना समझो डारविन के कैंब्रिज-जीवन के बारे में कुछ कहा ही नहीं।

हेनसलो थे कैंब्रिज विश्वविद्यालय में वनस्पति-शास्त्र के अध्यापक। वैसे तो उनका विशेष विषय था वनस्पति-शास्त्र ही, लेकिन प्रकृति-विज्ञान के प्रत्येक विषय में उनकी अच्छी दख़ल थी। सप्ताह में एक दिन उनके घर के दरवाज़े सब के लिए खुले रहते। जिस किसी को विज्ञान से प्रेम हो, वह निस्संकोच वहां जा सकता था। सभा सी लग जाती वहां। नाना विषयों पर बहस-मुबाहसे होते। लेख पढ़े जाते। इन बैठकों में भाग लेने के लिए डारविन को भी बुलाया गया। धीरे-धीरे डारविन का वहां आना-जाना ख़ूब बढ़ चला और डारविन अध्यापक महोदय के अत्यंत प्रिय पात्र बन गये। वह टहलने निकलते तो डारविन को भी अपने साथ ले लेते। रास्ते में चलते-चलते गुरू-चेले में विज्ञान के नाना विषयों पर बातचीत होती

चलती। कभी-कभी तो घर लौटते-लौटते एकदम सांझ हो जाती। फिर तो हेनसलो साहब, अपने चेले को घसीटते लाते। खाने की मेज़ पर ला बैठाते। बिना कुछ खिलाये-पिलाये किसी भी हालत में उन्हें जाने न देते।

कैंब्रिज-जीवन के वर्ष इसी तरह बीतने लगे। अध्यापक हेनसलो के आदेश के अनुसार डारविन कैंब्रिज जीवन के अंतिम वर्षों में भूतत्व-विद्या (जियॉलाजी) का विशेष रूप से अध्ययन करने लगे। अमली ढंग से भूतत्व-विद्या सीखने का एक सुयोग भी मिल गया। अध्यापक सेज़विक उन दिनों के एक नामी भूतत्व-वेत्ता थे। उत्तरी वेल्स के पहाड़ी इलाकों की भूतात्विक यात्रा पर निकलने की बात वह सोच रहे थे। अध्यापक हेनसलो के अनुरोध पर सेज़विक महोदय डारविन को अपना यात्रा-साथी बनाने पर राज़ी हो गये। डारविन ने आंखों से देखकर और हाथों से परखकर बहुत सी बातें सीखीं। जैसे, उन्होंने सीखा कि किसी देश को कैसे पहचाना जाता है, भांति-भांति की मिट्टियों की अलग-अलग किस्मों को कैसे जाना जाता है, विविध स्तरों की मिट्टी को कैसे पहचाना जाता है, किस स्तर की उम्र कितनी है इसका हिसाब कैसे लगाया जाता है, इत्यादि, इत्यादि।

यही था डारविन का असली जीवन। लेकिन इस असली जीवन का मतलब यह नहीं कि वह कॉलेज की पढ़ाई में ढील देते थे या उड़ान लगाते थे। नहीं, वह पढ़ाई में भी मन लगाते थे और वहां की परीक्षा में पास भी हो गये।

# चार

सन १८३१। उत्तर वेल्स की यात्रा से डारविन अभी-अभी घर लौटे हैं। थकी देह को ज़रा आराम दे रहे हैं। इतने में ही एक चिट्ठी मिली : "डारविन, दुनिया की सैर करने जाओगे ?"

"हां अभी !" दुनिया भर में घूम-फिर आने की साध डारविन में न जाने कितने दिनों से थी। तो क्या यह साध पूरी हो जायगी ?

हां, ज़रूर ! चिट्ठी में अध्यापक हेनसलो ने लिखा था कि "बिगुल" नामक कोई जहाज़ दुनिया का चक्कर लगाने के लिए जाने वाला है। उस जहाज़ के कप्तान फ़ित्ज़रॉय अपने कमरे में एक नौजवान वैज्ञानिक को जगह देने के लिए तैयार हैं। हां, तनखा-वनखा कुछ नहीं मिलेगी। अपना सारा खर्च आप ही उठाना होगा। इस शर्त पर अगर राज़ी हो, तो जा सकते हो।

जाओगे ? पादरी नहीं बनोगे ?

भाड़ में जाय पादरीपना ! डारविन ने जवाब में फ़ौरन ही लिख भेजना चाहा : "हां, मैं जाऊंगा।"

लेकिन...

लेकिन लिख नहीं सके। किसने बाधा डाली ?

पिता जी ने ! डॉक्टर रॉबर्ट डारविन ने। उन्होंने साफ़-साफ़ जता दिया कि मैं बहुत बरदाश्त कर चुका, मनमानी करके अपने जीवन को बरबाद करते अब तुम्हें और नहीं देख सकता ! लेकिन हां...

हां क्या ?

हां यह कि अगर कोई चतुर ज्ञानी आदमी कह दे कि तुम्हारा जाना उचित है, अच्छा काम है, तो मैं जाने देने से इन्कार नहीं करूंगा।

कापी के पन्ने पर यों ही बैठे-बैठे लकीरें खींचते-खींचते कभी ऐसा भी होता है कि लकीरों में से कोई आश्चर्यजनक चेहरा झांकने लगता है और देखकर तुम ख़ुद हैरत में रह जाते हो। बस, एकाध लकीर की कमी रह जाती है; ऐसा लगता है कि समझ-बूझकर हाथ साधकर अगर लकीर खींच दी गयी तो उस तस्वीर में प्राण भर उठेंगे, वह बोल उठेगी। ठीक ऐसे में अगर व्यस्त हाथों का झटका खाकर स्याही की

दावात उलट जाय श्रौर कापी के पूरे पन्ने को रंग दे तो ?

कुछ ऐसा ही डारविन के साथ भी हुश्रा। वह दु:ख से सूख से गये। श्रध्यापक हेनसलो को उन्होंने लिख दिया कि चाहा तो, पर हो नहीं सका। बापू राज़ी नहीं हुए।

लेकिन...

लेकिन, हुए। हो गये राज़ी। बापू की श्रनुमति मिल गयी। एक चतुर ज्ञानी श्रादमी ने श्राकर उनसे कहा कि ऐसे सुयोग एक बार हाथ से निकल जाने पर फिर वापिस नहीं श्राते हैं ? यह बात कही डारविन के चाचा ने। उनके कानों में खबर पहुंची नहीं, कि उन्होंने गाड़ी जोती श्रौर सिर्फ इतनी सी बात कहने के लिए भैया के घर श्रा पहुंचे। चार्ल्स के पिता को श्रपने भाई की सांसारिक व्यवहार बुद्धि पर बड़ा पक्का विश्वास था। सो, श्राखिर उन्होंने सहमति दे डाली।

भला फिर देर करता है कोई ? दूसरे ही दिन डारविन कैंब्रिज पहुंचे। श्रध्यापक के पास। उनसे चिट्ठी ली। जेब में डाली। श्रौर छूटते ही लंदन पहुंचे—कप्तान फ़ित्ज़रॉय के पास।

कप्तान को एक ख़ब्त थी। उसकी निगाहें लोगों के चेहरे की एक-एक बारीकी को देखती थीं। क्यों ? किस लिए ? इसलिए कि उसकी धारणा थी कि मुंह की गठन देखकर आदमी के स्वभाव का अन्दाज़ लगाया जा सकता है।

तो क्या डारविन के चेहरे की गठन में कप्तान को कुछ मिला ?

हां, मिला। डारविन की नाक कुछ चपटी सी थी। कप्तान की धारणा थी कि जिसकी नाक खड़ी न हो, वह आदमी मेहनती नहीं होता। इसीलिए डारविन को साथ ले चलने में वह हिचकिचाये। लेकिन फिर न जाने क्या सोचकर, आखिर राजी हो गये।

बातचीत पक्की हो गयी।

अब कोई देर थी तो जहाज़ के लंगर उठाने की।

# पांच

"बिगुल" जहाज़ इंगलैंड के प्लाइमथ बंदरगाह से खुला। सन १८३१। तारीख़, २७ दिसंबर।

केबिन के अपने कोने में बैठे डारविन एकाग्र मन से कुछ पढ़ रहे हैं। कौन सी किताब है यह? यह है चार्ल्स लॉयल की लिखी "भूतत्व की मूल नीति।" अभी-अभी प्रकाशित हुई है यह।

भगवान बारंबार पृथ्वी को सिरजते हैं, फिर उसे प्रलय में बहा देते हैं और फिर नये सिरे से सिरजते हैं—यही विश्वास था मनुष्य जाति का बहुत दिनों तक।

लॉयल ने कहा कि यह सब बिलकुल अवास्तविक है। प्रलय की बात निराधार है। विज्ञान की दृष्टि से उन्होंने व्याख्या करके समझाया कि पृथ्वी की सृष्टि किस प्रकार हुई है और इसमें जो नाना प्रकार के परिवर्तन और रूपांतर हुए हैं वे किन-किन नियमों के

आधार पर हुए हैं। ये परिवर्तन और रूपांतर आज भी, हमारी आंखों के सामने, होते जा रहे हैं।

उस किताब को पढ़कर डारविन की आंखें खुल गयीं। सभी पुरानी ग़लत धारणाएं उखड़ गयीं।

समुद्र, द्वीप, महाद्वीप, उपद्वीप, प्रायद्वीप, देश, महादेश! अमरीका, अफ्रीका, एशिया, आस्ट्रेलिया, योरप! लहरों को चीरता "बिगुल" जहाज़ बढ़ता रहा। डारविन डेक पर खड़े-खड़े आंखें फाड़-फाड़कर चारों ओर के दृश्य देखते। किसी टापू पर अगर जहाज़ लंगर डालता तो डारविन वहीं उतर पड़ते और टापू को देखते-घूमते दूर तक निकल जाते। क्या देखते वह? वह पेड़-पौधे देखते, जीव-जंतु देखते, उनके कंकाल देखते, उनके पथराये शव देखते, जिन्हें फ़ॉसिल कहते हैं। वह जो भी देखते खूब ध्यान से देखते, एक-एक बारीकी पर ग़ौर करते हुए देखते—जानकारी की गहरायियों में उतरते हुए देखते। जो कुछ वह देखते-समझते उसे लिखते भी जाते।

बड़ी मज़ेदार चीज़ों पर डारविन की निगाह पड़ती।

वह देखते कि एक ही जाति की वनस्पति अफ्रीक़ा के आसपास के द्वीपों में जैसी है, अमरीका के आसपास

के द्वीपों में वैसी ही नहीं है। ज़रा और ही तरह की है। डारविन सोचते कि यह अंतर क्यों है!

किसी देश में वह देखते कि कोई जानवर आज जिस आकार का पाया जाता है उसके पुरखों का आकार वही नहीं था। आज उस जानवर के जो नमूने घूमते-फिरते नज़र आते हैं, वे बहुत छोटे हैं और उसी जाति के जानवरों के पुरखों के जो कंकाल मिट्टी तले पथरा गये (फ़ॉसिल हो गये) हैं, वे उनकी तुलना में बहुत बड़े हैं। डारविन सोचते कि यह अंतर क्यों है।

एक जगह उन्होंने ऐसा कंकाल देखा जिसने उन्हें गहरे सोच में डाल दिया। उसका मेल आज के किसी एक नहीं बल्कि बहुत से जंतुओं से बैठता था—मानो इन बहुत से जंतुओं के शरीर एक ही में मिल गये हों। रेलवे का जैसे कोई जंकशन होता है न, और वहां से अलग-अलग लाइनों पर अलग-अलग गाड़ियां चलती हैं, इसी तरह पुराने ज़माने का यह जानवर मानो कोई जंतु-जंकशन हो। उससे निकलकर बदलते-बदलते नाना प्रकार और नाना जातियों के जानवर अपनी-अपनी विशेषताएं लेकर अलग-अलग राहें चुन-कर, विकास की दिशा में बढ़ चले थे।

का, आविष्कार भी किया। इस नयी बात ने, विज्ञान के इस नये सूत्र ने, मानव की उस दिन तक की तमाम पुरानी धारणाओं को चूर-चूर कर डाला।

डारविन हमेशा सोचा करते थे। वह सोचते थे कि इतना सारा जो मैंने देखा है, उसका मतलब क्या है? जहाज़ पर ही उन्होंने इस सवाल पर सोचना शुरू कर दिया था। बड़ी गहराई से सोचते थे वह। अपनी सारी बुद्धि को एक जगह समेट कर, एक-चित्त होकर सोचते। इन तमाम तथ्यों और घटनाओं के रहस्य को भेदने की कोशिश करते। वह अपने आप से पूछते कि इतना सारा जो कुछ मैंने देखा है, उसका आखिर मतलब क्या है?

सोचते-सोचते एक बात उनके मन में उठी। लेकिन किसी बात के मन में उठने से ही तो काम नहीं बन जाता न। मन में उठने वाली बात पर विज्ञान विश्वास नहीं करता। उसे युक्ति और तर्क से प्रमाणित करना पड़ता है।

वह कौन सी बात थी जो डारविन के मन में उठी?

"हमारा यह ग्रह महाकर्ष के निश्चित स्थायी नियम के अनुसार घूमता रहता है। ठीक उसी तरह एक अत्यंत ही सामान्य आरंभ से धीरे-



धीरे क्रम-क्रम से विकसित होते-होते अनगिनत सुंदरतम और अद्भुततम रूपों का विकास हुआ है, और अब भी होता जा रहा है।"

डारविन के मन में उठी इस बात का क्या मतलब था ?

इसका मतलब था यह कि धरती पर जो कुछ है, वह सब बदलता जा रहा है। खुद धरती भी बदल रही है। धरती का जो पहला रूप था, वह अब नहीं रहा है। आज जो धरती है, वह इस रूप में बहुत बदलते-बदलते आई है और आज की इस धरती पर भी हेर-फेर का क्रम जारी है।

इस धरती पर जो जीव जगत और वनस्पति जगत हैं, वे बदलते रहे हैं और बदलते जा रहे हैं। पहले-पहल जो पेड़-पौधे उगे थे, पहले-पहल जो जीव पैदा हुए थे, वे बहुत ही छोटे, सीधे-सादे और सामान्य थे। फिर वे पुराने पड़े, बदले और क्रम-क्रम से पुराने की जगह नये दिखाई पड़ने लगे। बदलते-बदलते साधारण की जगह विशेष नज़र आने लगे। सीधे-सादे के बजाय जटिल रूप प्रकट हुए। जीव जगत निचली सीढ़ियां पार करके ऊपरी सीढ़ियों पर चला आ रहा है।

इस तरह की बातें डारविन के मन में उठती थीं।

तो फिर इंतज़ार किस बात का था? क्या डारविन यह नहीं कर सकते थे कि मन में उठी इस बात को अपने अनगिनत तथ्यों के आधार पर वैज्ञानिक सत्य के रूप में स्थापित कर दें? डारविन ने अपने-आपसे कहा कि इसके लिए अभी कुछ इंतज़ार करना पड़ेगा।

इतना देख-सुन लेने पर, इतना जान-बूझ लेने पर भी डारविन ने अपने-आपसे कहा कि अभी तक काफी जानकारी हासिल नहीं हुई है। अभी और देखना होगा, अभी और जानना होगा। ऐसे प्रमाण देने होंगे जिनकी कोई काट न हो, किसी तरह की भूल या ग़लती न रह जाय।

समुद्री यात्रा से लौटने के बाद डारविन ने तपस्वी की तरह जीवन बिताना शुरू कर दिया। यह तपस्या ज्ञान के लिए थी। जांच-परख, अध्ययन-अनुशीलन, बहस-मुबाहसे, लिखना-पढ़ना—ये इस तपस्या के अंग थे। पूरे २३ वर्ष तक डारविन ऐसा ही एकाग्र, श्रम-कठोर जीवन बिताते रहे।

# ६ः

डारविन को अभी बहुत कुछ देखना-परखना और सोचना-समझना था। इसके लिए एक प्रयोगशाला ज़रूरी थी।

लेकिन शहर में नहीं, गांव में। प्रकृति के एकदम नज़दीक।

बहुत खोज-बीन के बाद डारविन को 'सारे' ज़िले के 'डाउन' नामक गांव में मनपसंद मकान मिला। शहर के कोलाहल से दूर, 'डाउन' एकांत गांव था। एकाग्र होकर विज्ञान की साधना के लिए यह बहुत ही उपयुक्त जगह थी। सन १८४२ की १४ सितंबर को डारविन अपने नये मकान में आ गये।

डारविन का स्वास्थ्य बहुत अच्छा नहीं था। ज़्यादा दौड़-भाग करने पर वह अस्वस्थ हो जाते थे। इसीलिए सामाजिक उत्सवों-समारोहों में वह बहुत ही कम आते-जाते थे। संगी-साथियों और पांच-पंचों से

मिलना-जुलना और बातचीत करना उन्हें अच्छा लगता था। लेकिन शरीर साथ दे तब न। इसीलिए कभी-कभी वह क्षुब्ध हो उठते थे। लेकिन फिर काम में डूब जाने पर यह क्षोभ दूर हो जाता था और मन को तृप्ति मिलती थी।

डारविन को खूब सबेरे उठने की आदत थी। हाथ-मुँह धोकर वह टहलने निकल पड़ते। ठीक पौने आठ बजे लौटकर जल-पान करते और फिर पढ़ाई-लिखाई के कमरे में पहुंच जाते।

पढ़ाई-लिखाई के इस कमरे का वर्णन डारविन के बचपन के संस्मरणों में मिलता है।

खिड़की से अटका रखा गया एक बोर्ड ही उनकी मेज़ का काम देता था। इसी पर वह जांच-पड़ताल और काट-छांट के काम करते थे। इस मेज़ को कुछ नीचा करके लटकाया गया था, ताकि बैठे-बैठे काम करने में सुभीता रहे। पास ही एक और गोल मेज़ थी। उसकी अलग-अलग दराज़ों में अलग-अलग चीज़ें रहती थीं। दराज़ों पर ठप्पे लगे रहते: "उमदा औज़ार," "कामचलाऊ औज़ार," "नमूने," इत्यादि, इत्यादि। काम करते-करते जब जिस चीज़ की ज़रूरत होती, चार्ल्स दराज़ खींच कर उसे निकाल लेते। मेज़

के दाहिनी तरफ ताकों की पांत थी। इन ताकों पर छोटी-छोटी चीज़ें सजा कर रखी रहती थीं। कांच के गिलास, रकाबियां-तश्तरियां, बिसकुट के डब्बे ( चारा देने के लिए ), गत्ते के ठप्पे, रेत से भरे कांच के गमले, और इसी तरह की न जाने कितनी चीज़ें।

इस तरह बड़े ढंग से काम करने वाले आदमी थे डारविन। इसीलिए उनका समय बेकार बरबाद नहीं होता था। इसीलिए उन्हें कभी कोई काम दुबारा नहीं करना पड़ता था।

अच्छा तो अब लौट चलें डारविन के काम की कहानी पर।

बेहद पढ़ते थे डारविन। जीव-जंतुओं और पेड़-पौधों के बारे में जहां कहीं कोई लेख या किताब निकलती, ढूंढ़-ढांढ़ कर उसे ले आते और पढ़ डालते। पढ़ने का मतलब सिर्फ पन्ने पलटना ही नहीं था। वह ज़रूरत की बातों पर पेंसिल से निशान लगाते, हाशिये पर अपने नोट लिख लेते और किताब के आख़िरी पन्ने पर निशान लगे पन्नों की सूची बना डालते। किताबों की जब पक्की तालिका तैयार करते तो निशान लगे पन्नों को देख-देखकर पूरी किताब का सारांश लिख डालते।

इतनी मेहनत से लिखे सारांश-लेखों को डारविन कुबेर के धन की तरह बड़ी हिफाजत से रखते। एक बार गांव में आग लग जाने का खतरा पैदा हो गया। डारविन ने अपने मँझले लड़के फ्रांसिस को बुलाया और उसको समझाया कि "जैसे भी हो, बेटे, मेरे लेखों की पेटियों को ज़रूर बचा लो। अगर वे आग की भेंट हो गयीं तो मुझे सिर पटक-पटककर जान दे देनी पड़ेगी।"

लेकिन डारविन सिर्फ़ पोथी-घोट पंडित नहीं थे। किताबें पढ़ना तो उनकी वैज्ञानिक खोज-बीन का, तथ्य संकलन का, एक पहलू भर था।

तो और पहलू कौन-कौन से थे?

ख़ुद अपनी आंखों से देखना।

अच्छी जातियों के, नयी जातियों के, फल उगानेवाले जिस माली की भी प्रशंसा होती, डारविन सीधे उसके बाग़ीचे में जा पहुंचते।

जिनकी कोशिशों या परीक्षाओं के फलस्वरूप अच्छी नसल के, नयी नसल के जानवर—भेंड़, गायें या सुअर—पैदा होते, डारविन सीधे ही उनके गोंठों या बथानों में जा पहुंचते।

वहां पहुंचकर वह अपनी आंखों से सब-कुछ देखते,

माली या चरवाहे के साथ बातचीत करते और सवाल पर सवाल करके यह जान लेना चाहते कि यह सब हुआ कैसे।

लेकिन सभी के पास पहुंच पाना और सब-कुछ अपनी आंखों से देख पाना सम्भव है नहीं। इसलिए उन्होंने बीच-बीच में लोगों के पास डाक से सवालों को सूची भेजनी शुरू की। वह इस सूची को छपा लेते और अलग-अलग लोगों के पास पत्र भेजते कि कृपा करके इन सवालों का जवाब लिख भेजिये और इस तरह मेरी मदद कीजिये।

यहां डारविन की एकाध झक्क की चर्चा करने को जी चाहता है।

कागज़ कोई अनमोल चीज़ तो है नहीं! लेकिन कागज़ पर डारविन की बेहद ममता थी। कागज़ की बरबादी वह ज़रा भी बरदाश्त नहीं कर पाते थे। सादा कागज़, एक ही तरफ लिखा हुआ या छपा हुआ कागज़, वह बड़े जतन से रख छोड़ते। इन्हीं कागज़ों पर वह अपने लेखों को पहले लिखते। सुनते हैं कि विद्यासागर जी का कागज़-प्रेम भी कुछ ऐसा ही था।

अब जो ख़बर मैं सुनाने जा रहा हूं, उसे सुनकर आपको बहुत ही अचम्भा होगा।

मान लो कि हम डारविन से भेंट करने गये हैं। दरबान हमें पढ़ाई-लिखाईवाले कमरे में पहुंचा गया है। पहुंचते ही हम क्या देखते हैं कि डारविन बहुत सुन्दर छपाई-बंधाईवाली एक किताब गोद में रखे, उसे बड़ी तेज़ी से फाड़ते चले जा रहे हैं। ऐसी हालत में हम सचमुच चकित होकर बेवकूफ़ों की तरह खड़े देखते रह जायेंगे। इसके लिए हमें तैयार न पाकर डारविन पहले ज़रा सा हंस उठेंगे। फिर धीरे-धीरे कहेंगे, "किताब बड़े काम की है। अक्सर इसकी ज़रूरत पड़ जाती है। लेकिन है बड़ी मोटी। मोटी किताब मेरी आंखों को ज़रा भी नहीं सुहाती। उलटने-पुलटने और हटाने-रखने में बड़ी दिक्कत होती है। इसीलिए इसे फाड़कर दो हिस्से किये ले रहा हूं।"

लॉयल की किताब "भूतत्व की मूल नीति" का नाम मैं पहले भी बता चुका हूं। काफी बड़ी किताब है वह। डारविन के बारंबार हठ करने पर लॉयल साहब ने अपनी इस किताब का दूसरा संस्करण दो हिस्सों में छपवाया।

अच्छा, छोड़ो किस्सों-कहानियों को ! अब काम की बात पर आ जायें।

सन् १८४४ में डारविन की पहले-पहल छपी

रचना प्रकाशित हुई। यह किताब आग्नेय द्वीप के बारे में थी।

सन् १८४५ में डारविन के यात्रा-वर्णनों का दूसरा संस्करण निकला। पहला संस्करण फ़ित्ज़रॉय की रचना के साथ ही छपा था। इस बार यह अलग से निकला। जिस तरह पहली संतान पर मां का विशेष प्यार होता है, उसी तरह इस किताब पर डारविन की ममता सदा बनी रही। इस किताब की बिक्री भी खूब हुई थी। दूसरा संस्करण दस हज़ार का छपा था। एक भी प्रति बची नहीं रही। डारविन के जीवन-काल में ही इस पुस्तक का अनुवाद जर्मन और फ्रांसीसी भाषाओं में हो चुका था। उनके भी एक से अधिक संस्करण छप चुके थे।

सन् १८४६ में "दक्षिणी अमरीका का भूतात्विक पर्यवेक्षण" ("जियॉलॉजिकल ऑबज़रवेशन ऑन साउथ अमेरिका") नाम की एक और किताब प्रकाशित हुई।

सन् १८४६ से लगातार आठ बरसों तक डारविन सेरिपिड नाम के एक समुद्री जीव की परीक्षा में लगे रहे। इस जीव पर सबसे पहले डारविन की ही नज़र पड़ी थी। उन दिनों वह "बिगुल" जहाज़ में दुनिया

की सैर कर रहे थे। यह जीव उन्हें चिली देश के किनारे समुद्र में मिला था। चिली के समुद्र-तटवाले इसी जाति के दूसरे जीवों के साथ इसका इतना अधिक अंतर था कि उसकी ओर ध्यान गये बिना रह नहीं सकता था। कई बरसों के बाद पुर्तगाल के किनारे के समुद्र में इस तरह के एक और सेरिपिड का पता लगा। आठ बरस के शोध-संधान और जांच-पड़ताल के बाद इस सेरिपिड के बारे में दो किताबें प्रकाशित हुईं।

सन् १८५४ के सितंबर महीने से डारविन "बिगुल" जहाज़ पर लिखी अपनी पोथियों को पढ़-पढ़कर दिमाग में विचारों को सहेजने लगे। इन पुराने लेखों पर निगाह डालते-डालते कई सिद्धांत उनके मन में धीरे-धीरे जड़ें जमाने लगे। उन्होंने बारंबार खुद ही व्यावहारिक परीक्षाएं करके इन सिद्धांतों को कसौटी पर परखना शुरू किया।

सन् १८५६ में लॉयल साहब ने डारविन को लिखा कि तुम अपने सिद्धांतों को तथ्यों का प्रमाण देकर ब्योरेवार लिख डालो। उनकी बात मानकर डारविन ने अपने सिद्धांतों को लिखना शुरू कर दिया। यह काम आधे के क़रीब पहुंचा ही था कि एक नयी तरह की समस्या उठ खड़ी हुई।

अलफ्रेड रसेल वैलेस नाम के एक अंग्रेज प्रकृति-खोजी सज्जन दक्षिण-पूर्वी एशिया के विषुवद्-अंचल के पेड़-पौधों और जीव-जंतुओं के बारे में खोज का काम कर रहे थे। सन् १८५८ की गर्मियों में वैलेस साहब ने डारविन के पास एक लेख भेजा। लेख मलाया प्राय-द्वीप से भेजा गया था। साथ में एक चिट्ठी भी थी। चिट्ठी में लिखा था कि आप (यानी डारविन साहब) अगर यह समझें कि इस लेख का कोई मूल्य है तो कृपा करके इसे लॉयल साहब के पास भेज दें।

लेख पढ़कर डारविन तो बिलकुल अवाक् रह गये! जो कुछ वह सोच रहे थे, वैलेस ने भी ठीक वही लिखा था।

इंगलैंड में उन दिनों एक वैज्ञानिक समिति थी। उसका नाम था लिनियन सोसायटी। वैलेस का लेख वहीं भेजा गया। लॉयल साहब और हूकर नाम के एक मित्र के अनुरोध पर डारविन ने भी अपने सिद्धांत का सारांश तैयार कर लिनियन सोसायटी के पास भेज दिया। दोनों लेख सोसायटी की पत्रिका में एक साथ प्रकाशित हुए। वैलेस के लेख की भाषा बड़ी साफ़-सुथरी और बोधगम्य थी। लेकिन डारविन के लेख की भाषा बड़ी शिथिल और ऊबड़खाबड़ थी। डारविन

ने आशा की थी कि उनकी रचना को पढ़कर वैज्ञानिकों में हलचल मच जायेगी। लेकिन ऐसी कोई बात नहीं हुई। डबलिन के एक अध्यापक ने इन रचनाओं पर अपनी राय प्रकट करते हुए कहा कि इनमें जो नयी बातें हैं वे सब झूठ हैं और जो सच हैं वे सब पुरानी बातें हैं।

इस घटना से डारविन को एक अच्छी सीख मिली। सीख यह थी कि जब कोई नयी बात लोगों को सुनानी हो तो उसे खूब फैलाकर, विस्तार के साथ, समझा-बुझाकर, कहना चाहिए। नहीं तो लोग उस बात पर ध्यान नहीं देंगे, उसे लेकर माथा-पच्ची नहीं करेंगे।

खैर जो भी हो! डारविन निराश नहीं हुए। अधूरा छोड़ा हुआ काम उन्होंने फिर शुरू कर दिया। १३ महीने, १० दिन के अथक परिश्रम के बाद, लिखने का काम समाप्त हुआ।

२३ साल बाद किताब निकली। 'निकली' कहना कुछ गलत होगा। किताब दरअसल डारविन से निकलवायी गयी। कारण यह कि २३ वर्ष बीत जाने पर भी वह यही सोच रहे थे कि अभी इसे निकालने का समय नहीं आया है, कि जल्दबाज़ी करके किताब

छपा देना उचित नहीं होगा। लेकिन संगी-साथियों और मित्रों ने हठ किया। उन्होंने कहा कि अब किसी भी कारण देर नहीं करने दी जा सकती। देर हुई तो मामला बिगड़ जायेगा, इस महान आविष्कार के यश से डारविन वंचित रह जायंगे।

मित्रों के अनुरोध को डारविन टाल नहीं सके। सन् १८५९ के नवंबर महीने में डारविन की "ओरिजिन ऑफ़ स्पिशीज़" नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। २३ वर्षों के दीर्घ परिश्रम के फलस्वरूप जिस दिन इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की १,२५० प्रतियां छपकर निकलीं, उसी दिन हाथों-हाथ बिक गयीं। एक भी प्रति नहीं बची। दूसरे संस्करण की ३००० प्रतियां भी देखते ही देखते खप गयीं। सन् १८५९ से सन् १८७६ तक के १७ बरसों में विज्ञान की एक ऐसी जटिल पुस्तक की १६ हज़ार प्रतियां बिक गयीं। हमारे देश में विज्ञान की किताबों का ऐसा आदर होने में अभी कितनी देर है!

इस किताब ने मानव समाज के चिंतन जगत में एक भयानक उथल-पुथल मचा दी। पादरियों का पारा तो सातवें आसमान पर चढ़ गया। वे चीखने लगे: "धर्मद्रोह! धर्मद्रोह! बाइबिल में ऐसी बात

नहीं लिखी है। डारविन को मानने का मतलब है, बाइबिल को मानने से इनकार करना। अगर डारविन का कहना सत्य है, तो बाइबिल मिथ्या ठहरती है !"

(डारविन पादरी होने चले थे न !)

बाइबिल क्या कहती है ? बाइबिल कहती है कि ईश्वर ने 'किसी शुभ दिन' नाना जातियों के प्राणियों की सृष्टि कर उन्हें धरती पर छोड़ दिया, बिखेर दिया। अर्थात् आज हम जो कुछ भी देखते हैं वह सब, प्रत्येक पेड़-पोधा, प्रत्येक प्राणी, सृष्टि के पहले दिन से ही इस पृथ्वी पर मौजूद है।

और डारविन क्या कहते हैं ? डारविन कहते हैं कि यह सब-कुछ पहले दिन से ही नहीं बल्कि धीरे-धीरे अस्तित्व में आया है, विकास की सीढ़ियां पार करता हुआ आया है, बदलता-बदलता आया है।

जो लोग मनुष्य को बड़ा, महान, बनाना चाहते हैं, पृथ्वी को और भी अधिक सुख-समृद्धि का स्थान बनाना चाहते हैं, उन्होंने बाइबिल को रद्द कर दिया।

उन्होंने डारविन को मान लिया।

डारविन का मत क्या है ? किन-किन तथ्यों के

प्रमाण देकर डारविन ने अपने मत को अकाट्य सिद्ध किया है ?

इस बहस को शुरू करने से पहले डारविन के जीवन की दो-चार और बातों को जान लेना उचित रहेगा।

"ओरिजिन ऑफ स्पिशीज़" ही डारविन की प्रधान पुस्तक है। पर डारविन ने उसके बाद और भी कई छोटी-बड़ी पुस्तकें लिखीं। डारविन-सिद्धांत को समझने के लिए इन पुस्तकों को पढ़ना भी अत्यंत आवश्यक है।

सन १८६८ में डारविन की पुस्तक "घरेलू जानवरों और पौधों के अंदर प्रकारभेद-जनक परि-वर्तन" ("वैरियेशन ऑफ ऐनिमल्स् ऐंड प्लांट्स् अण्डर डोमेस्टिकेशन") निकली।

सन १८६२ में ही ऑरकिडके पेड़ के बारे में डारविन की लिखी हुई एक और छोटी पुस्तक छपी थी। सन १८७५ में "लत्तरदार पौधे" ("क्लाइंबिंग प्लांट्स्") नामकी पुस्तक निकली।

सन १८७१ में "मनुष्य का अवतार" ("डिसेंट ऑफ मैन") नाम की पुस्तक निकली थी। सन १८७२ में "मानव और पशु में भावनाओं की अभि-

व्यक्ति" ("एक्सप्रेशन ऑफ इमोशंस इन मैन ऐंड ऐनिमल्स") पुस्तक निकली। यह पुस्तक भी बड़ी तेजी से बिकी। पहले दिन ही उसकी ५,२६७ प्रतियां बिक गयी थीं! सन १८७५ में "कीट-भोजी पौधे" ("इनसेक्टिवोरस प्लांट्स्") प्रकाशित हुई। सन १८७७ में "फूलों की विविध आकृतियां" ("डिफरेंट फ़ार्म्स ऑफ़ फ़्लावर्ज") छपी। सन १८७६ में उन्होंने अपने पितामह की जीवनी ("लाइफ़ ऑफ़ इराज़्मस डारविन") प्रकाशित करायी। सन १८८० में "पौधों की गति-शक्ति" ("पावर ऑफ मूवमेंट इन प्लांट्स्") प्रकाशित हुई।

आइये, अब हम डारविन-सिद्धांत के बारे में बातें शुरू करें।

# सात

एक है तालाब। मान लिया कि इस तालाब में एक मछली ने ५०० अंडे दिये हैं। अब अगर एक-एक अंडे से एक-एक बच्चा हुआ तो तालाब में मछली के कितने बच्चे पाये जाने चाहिए? ५०० न? लेकिन उतने पाये जाते हैं? और जितने बच्चे पाये भी जाते हैं, क्या सबके सब बढ़कर मछली बन जाते हैं? इनमें से हर प्रश्न का उत्तर है: नहीं!

एक बाग़ीचा है। बाग़ीचे में अमरूद का एक ही पेड़ है। गिनकर देखा इसमें तीस अमरूद लगे हैं। मान लिया कि एक-एक अमरूद में सौ-सौ बीज हैं। कुल बीज हुए कितने? ३००० न! तो इन ३००० बीजों से अमरूद के ३००० पौदे उगने चाहिए। दो-चार बरसों में बाग़ीचे को अमरूद के पेड़ों से भर जाना चाहिए। लेकिन क्या सचमुच कभी वह ऐसा भरता है? जितने पौदे उगते हैं, सब के सब क्या

बढ़कर पेड़ बन जाते हैं ? फल देने लगते हैं ? इनमें से भी हर प्रश्न का उत्तर है : नहीं !

डारविन द्वारा दिये गये एक उदाहरण को ही ले लीजिये।

हाथी औसत सौ साल तक जीता है। सौ बरसों में हाथी के एक जोड़े से औसत छः बच्चे होते हैं। मान लिया जाय कि ७५० साल पहले हाथियों का एक ही जोड़ा था। सच पूछो तो थे बहुत से जोड़े, लेकिन मान लिया कि एक ही जोड़ा था। अब हिसाब लगाओ कि हाथियों के इस एक जोड़े से इन ७५० बरसों में कितने हाथियों को पैदा होना चाहिए था। एक करोड़ नब्बे लाख न ? लेकिन इतने हाथी पैदा हुए भी हैं ? जाहिर है : नहीं !

डारविन की भाषा में इस घटना को कहते हैं—अतिप्रजनन।

अंडे अनेक होते हैं, बीज अनेक होते हैं, बच्चे अनेक होते हैं। लेकिन सब के सब बचते नहीं, जीते नहीं, बड़े नहीं होते। अधिकतर मर जाते हैं। बचते हैं थोड़े से ही। बड़े भी थोड़े से ही होते हैं।

प्राणी के जन्म लेते ही उसकी लड़ाई शुरू हो जाती है : जीने के लिए लड़ाई, जीते रहने के लिए

लड़ाई। अगर जीना है, तो खाने के लिए भोजन जुटाने का बंदोबस्त करना ही पड़ेगा, रोगों का सामना करना ही पड़ेगा, अपनी प्रकृति को चारों तरफ की आबहवा के अनुकूल बनाना ही पड़ेगा, अपने से शक्तिशाली शत्रुओं से अपनी रक्षा—आत्मरक्षा—करनी ही पड़ेगी।

डारविन की भाषा में इस घटना का नाम है : जीवित रहने के लिए लड़ाई, या अस्तित्व के लिए संघर्ष।

इस लड़ाई में जो जीतता है, वही टिक पाता है; जो हारता है, वह मिट जाता है।

जीतता कौन है ? कौन टिक पाता है ?

जिसमें लड़ने की क्षमता अधिक होती है। एक उदाहरण ले लिया जाय।

एक जंगल है। इस जंगल में हिरनों का एक झुंड रहता है। एक बार इस जंगल में एक बाघ आया। कितने ही हिरन तो बाघ के पेट में समा गये। कुछ ही बच रहे। कौन बच रहे ? बच रहे वे जिनकी निगाहें औरों से ज़्यादा पैनी और तेज़ थीं, जो औरों की तुलना में ज़्यादा तेज़ दौड़ लेते थे। इस तरह हम देखते हैं कि एक ही जाति के होने पर

भी सब हिरन हूबहू एक ही तरह के नहीं होते। कोई-कोई औरों से ज़रा अलग तरह के होते हैं। उनमें औरों से एक मामूली अंतर होता है। उसी मामूली से अंतर के बूते पर उनमें से कई बच गये। इसी मामूली अंतर के अभाव में बाकी सारे मारे गये !

डारविन की भाषा में इस घटना का नाम है : प्रकारण, अर्थात् प्रकार-भेद पैदा होना।

जो बचे रहे, वे अब इस बात की कोशिश करेंगे कि अपने बच्चों को, अपने वंशवालों को भी, यह विशेष गुण देते जायें। अर्थात्, उनके बच्चे अपने मां-बाप और दादा-दादी की तरह अपनी निगाहें पैनी रखने की कोशिश करें, लंबी-लंबी छलांगें भरकर दौड़ने की कोशिश करें। हो सकता है कि इस कोशिश में एक ही पीढ़ी के अंदर वे सफल न हो पायें, लेकिन कई पीढ़ियों तक कोशिश करते रहने पर धीरे-धीरे ये विशेष गुण उनके अंदर क्रमशः विकसित हो जायेंगे।

मान लो कि बरसात नहीं हुई है। मिट्टी पत्थर की तरह कड़ी पड़ गयी है। पेड़-पौधे सूखे जा रहे हैं, मुरझाये जा रहे हैं। बहुत गरमी है। लेकिन इस गरमी में भी ऐसे एकाध पेड़ हैं जो मुरझा तो गये

हैं, लेकिन मरे नहीं हैं। पानी पाते ही वे फिर ताजे ग्रौर हरे हो उठते हैं। ये पेड़ अगर बच गये तो किस बल-बूते पर बच गये? इसका सीधा जवाब यही है कि ग्रौर पेड़-पौधों की अपेक्षा ये ज़्यादा गरमी बरदाश्त कर सकते हैं।

यह विशेषता, यह स्वतंत्रता, हरएक के अंदर, हरएक जीव के अंदर, प्रत्येक उद्भिद के अंदर, एक ही परिवार के अंदर, बल्कि एक ही मां के पेट से पैदा हुए भाई-बहिनों के अंदर भी, किसी-किसी में पैदा हो जाती है। कोई अधिक जाड़ा-पाला सह सकता है, तो कोई अधिक गरमी सह सकता है। कोई अधिक भूख सह सकता है तो कोई कम। रोग होने पर कोई अधिक कमज़ोर हो जाता है तो कोई कम।

ऐसी हालत में जीतता कौन है? कौन टिक पाता है? वही जो ग्रौरों की बनिस्बत कुछ अधिक स्वतंत्र, कुछ अधिक विशिष्ट होता है।

जो बच जाता है, उबर जाता है, वह अपने शरीर के उन अंगों को ग्रौर भी पूर्णता की ग्रोर पुष्ट करता है जिन अंगों ने उबरने में, बचे रहने में, उसकी सहायता की होती है। जिस अभ्यास ने, जिस गुण ने, उसे ग्रौरों की तुलना में श्रेष्ठ बनाया, उस

अभ्यास का, उस गुण का, व्यवहार वह और अधिक करने लगता है। और, जो अंग उसके किसी काम नहीं आये उन्हें त्याग देने की कोशिश करने लगता है। जो अभ्यास उसके आगे बाधा बनकर खड़े हो गये थे, उन्हें उसने बराने की कोशिश शुरू कर दी। इसी तरह से धीरे-धीरे बहुत दिनों तक उसके उन्नत अंग और उसके अच्छे अभ्यास उसके वंशधरों में क्रम-क्रम से आप ही आप पनपने लगे और क्रम-क्रम से अत्यंत स्पष्ट रूप में पनप उठे। इस तरह उस जाति की एक नयी प्रजाति या शाखा पैदा हो जाती है।

कुछेक उदाहरण लेकर इस मामले को कुछ और गहराई से, तौलकर, समझ लिया जाय।

किसी गृहस्थ के घर के पिछवाड़ेवाले पोखर के पालतू हंस को ले लीजिये। क्या वह हंस लम्बी-लम्बी उड़ानें भर सकता है? नहीं। डैने तो उसके भी हैं। लेकिन डैनों के बावजूद वह अच्छी तरह उड़ नहीं पाता। और जंगली हंस हैं कि गजब की उड़ानें भरते हैं।

यह हुआ कैसे?

डारविन ने तौला।

क्या तौला?

उन्होंने पालतू और जंगली हंसों के डैनों की हड्डियों को तौला। उन्होंने देखा कि पालतू हंस के डैनों की हड्डी वज़न में बहुत हलकी होती है। उन्होंने यह भी देखा कि पालतू हंस के पैरों की हड्डी जंगली हंस के पैरों की हड्डी से काफी भारी होती है।

यह क्यों हुआ ?

यह इसलिए हुआ कि जंगली हंस उड़ता है ज्यादा, और पालतू हंस चलता है ज्यादा।

पालतू बनने से पहले सभी हंस जंगली होते थे; उड़ते-फिरते चारे की टोह लगाते रहते थे।

पालतू बनने के बाद उनके जीवन का सिलसिला ही बदल गया। उन्हें तालाब में तैरने और तैरकर चारे की जुगाड़ करने की कला सीखनी पड़ी। क्या सभी जंगली हंस शुरू से अच्छी तरह तैरने लगे ? न ! ऐसी बात नहीं हुई। उनमें से जिनके पैरों में कुछ ज्यादा जोर था, बेहतर तैर सके, अपने लिए चारे का बंदोबस्त कर सके, जी गये, बड़े हुए, उनके बाल-बच्चे पैदा हुए। धीरे-धीरे तैरने की यह ताकत पीढ़ी-दर-पीढ़ी और भी हंसों में फैलती गयी। क्रमशः जंगली हंसों की जाति दो अलग-अलग शाखाओं में बंट गयी। पालतू हंसों की अलग जाति बन गयी और जंगली हंसों

की अलग। अवस्थाओं के हेरफेर में पड़कर पालतू हंसों के शरीर की गठन भी एकदम बदल गयी।

या, मछली की मिशाल ले लो।

जिन जीवों के रीढ़ें होती हैं उन्हें समेरुक या रीढ़दार प्राणी कहते हैं। इस धरती पर सबसे पहले जिस पूरे-पूरे समेरुक या रीढ़दार प्राणी ने जन्म लिया वह थी—मछली।

करोड़ों-करोड़ साल पहले की बात है। एक बार ऐसी अवस्था आ गयी कि पानी के अन्दर रह पाना मछलियों के लिए असम्भव हो गया। वे दिन भी इस धरती पर भयंकर सूखे के दिन थे। सूखी धरती पर निकले बिना जान बचाना मुश्किल था। कोई और चारा था ही नहीं। तो क्या सभी मछलियां सूखी धरती पर आ सकीं? नहीं, यह सबके बस का नहीं था। हम अपनी आंखों से देख सकते हैं कि कवई मछली बड़े मज़े में टहलती हुई सूखी ज़मीन पर चली आती है और हिलसा मछली सूखी ज़मीन पर रखे जाते ही बेबसी में फड़फड़ाने लगती है।

खैर जो भी हो। किसी-किसी जाति की मछलियों ने सूखी धरती पर भी जीवित रहने की कला सीख ली। नदी-समुद्र के फिर से भर जाने पर भी

वे पानी में नहीं लौटीं। वे धरती पर ही रह गयीं। मिसाल के लिए मेंढकों की जाति का नाम लिया जा सकता है। इस तरह हम देखते हैं कि एक विशेष जाति के जलचर प्राणी ही थलचर मेंढक बन बैठे। बाहर से, सिर्फ ऊपर-ऊपर से, इस विषय को समझ पाने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन उनके शरीर के चमड़े को उघारकर देखा जाय तो हम यही पायेंगे कि दोनों जातियों के शरीर की अंदरूनी बनावट में बेहद एकरूपता है। मछली के छवों और मेंढक की बेंगचियों (मछली के आकार के उनके बच्चों) को पास-पास रखकर देखा जाय तो–पहले से न मालूम होने पर–कहना कठिन हो जायगा कि इनमें से मछली के बच्चे कौन से हैं और मेंढक से कौन से। मेंढक उभयचर, यानी पानी तथा सूखी ज़मीन दोनों जगह रह सकनेवाला, प्राणी है। अपने बालपन यानी बेंगची-जीवन में तो वह पानी में रहता है यानी जलचर होता है, और दुम के झड़ जाने के बाद, मेंढक बनते ही, थलचर बनकर सूखे में रहने लगता है। इससे यह समझा जा सकता है कि मेंढक पहले पूरा जलचर था। वह पानी में रहता था और जलचरों की ही एक शाखा की अवस्था में हेरफेर आने पर उभयचर मेंढक बन गया।

अब जिराफ़ का उदाहरण लेकर इस विषय को समझा जाय।

किसी जंगल में जिराफ़ों का एक झुंड रहता था। ध्यान रहे कि आज-कल के जिराफ़ों के जो पुरखे थे, उनकी गरदनें इतनी लम्बी नहीं थीं। उस जंगल में जितने भी पेड़-पौधे थे, सब ऊंचे-ऊंचे थे। सभी जिराफ़ों की गरदनें एक-समान लम्बी नहीं थीं। सो जिनकी गरदनें कुछ ज्यादा लम्बी थीं, वे ही ऊंची डालों तक अपना मुंह पहुंचा पाते थे। वे ही फल-पत्तियां खाकर अपने जीवन की रक्षा कर सके और अपना वंश चला सके। लेकिन छोटी गरदनोंवाले न तो आप बचे रह सकते थे और न अपने वंश को ही बढ़ा सकते थे। लम्बी गरदनवालों के वंश बढ़ते रहे और वंश-परम्परा में पूरी जिराफ़ जाति ही लम्बी गरदन वाली हो गयी।

प्रकृति में यह जो सिलसिले चल रहे हैं—सभी जीवों की अपना-अपना वंश बढ़ाने की कोशिशें, उनके अन्दर जीवन की परम्परा को कायम रखने की लड़ाइयां, अपने विशेष गुणों के कारण इन लड़ाइयों में किन्हीं-किन्हीं की जीत, अपने बाल-बच्चों को उन विशेष गुणों को सिखा देने की कोशिशों आदि के

सिलसिले—इन सभी सिलसिलों और घटनाओं को डारविन ने एक खास नाम दिया। यह नाम है—

प्राकृतिक निर्वाचन !

भला सीधी-सादी भाषा में निर्वाचन का क्या अर्थ होता है ? निर्वाचन का मतलब होता है—चुनाव। दस-पांच तरह की चीजों में जो सबसे अच्छी चीज है उसे चुन लेने को ही कहते हैं निर्वाचन। चुन लेने का यह जो सिलसिला है, वह प्रकृति के अन्दर भी जारी रहता है। फलां ठीक है, उसमें लड़ने की ताकत ज्यादा है, वह जीने की लड़ाई में टिक सकता है, उबर सकता है, जीता रह सकता है, उसका वंश कायम रह सकता है—बस, इसलिए वह चुन लिया जाता है।

यही है डारविन का सिद्धान्त। ऊपर हमने घुमा-फिराकर, तरह-तरह के उदाहरण देकर इसी सिद्धान्त को समझाने की कोशिश की है। अब थोड़े में, एक ही सांस में, इस पूरे सिद्धान्त को कह डालने की कोशिश की जाय :

प्रकृति के अन्दर हम देखते हैं कि सभी प्राणी क्रम परम्परा से अपनी संतानें पैदा करते हैं। लेकिन जितने पैदा होते हैं, उतने जीते नहीं हैं।

ज्यादातर ऊंची अवस्था में पहुंचने से पहले ही मौत के शिकार हो जाते हैं।

जीने के लिए उनके बीच भीषण लड़ाई छिड़ती है। खाने के लिए अपना भोज्य-पदार्थ पाने की लड़ाई छिड़ती है, आबहवा के साथ लड़ाई चलती है, अपनी आत्म-रक्षा की लड़ाई चलती है।

इस लड़ाई में वही जीतता है, जिसमें कोई विशेषता औरों से बढ़-चढ़कर होती है। यह विशेषता कितनी भी मामूली क्यों न हो, अगर लड़ाई में जीतने में उसकी मदद करती है, तो वह इसी बूते पर अपनी जीवन-रक्षा कर लेता है, अपना वंश बढ़ाने लगता है। इस विशेषता को अपने बाल-बच्चों को भी विरासत में देता है।

वंश की परम्परा बढ़ाने के साथ-साथ यह विशेषता और भी स्पष्ट होती जाती है, उसी वंश के अनेकों वंशधरों के अन्दर बढ़ती जाती है। और आखिरकार उस वंश को एक नयी धारा मिल जाती है। इस तरह एक नयी शाखा या प्रजाति की सृष्टि होती है।

डारविन के सिद्धान्त में नयी बात क्या है ? नयी बात है, परिवर्तन। डारविन ने इस परिवर्तन की एक व्याख्या भी की है। यह परिवर्तन है, प्राकृतिक निर्वाचन। धर्म-शास्त्र इस परिवर्तन को नहीं मानते। धर्म-शास्त्रों का कहना है कि भगवान ने एक ही दिन में सब-कुछ तैयार कर दिया था। इसके बदले डारविन ने सत्य की स्थापना की—अकाट्य तथ्यों के प्रमाण देकर। वह जीव-विज्ञान की दुनिया में एक नया युग ले आये। उन्होंने नये-नये आविष्कारों का रास्ता खोल दिया, और दुनिया के अनगिनत वैज्ञानिकों को नये-नये तथ्यों को एकत्र करने के लिए प्रेरणा दी।

# आठ

डारविन के प्रमाण क्या-क्या हैं ?

(१) इतिहास के प्रमाण ।

जीव-जगत की प्रत्येक जाति या उप-जाति का अपना एक इतिहास है। इतिहास बहियों या पोथियों में नहीं लिखा है। यह लिखा हुआ है धरती की छाती पर, मिट्टी के विविध स्तरों पर, पथरायी ठठरियों (फॉसिलों) के साक्ष्यों के ऊपर।

(२) शरीर की गढ़न की तुलना से हासिल किये गये प्रमाण ।

ये वे प्रमाण हैं जो अलग-अलग जातियों के जीवों के अंग-प्रत्यंग का मिलान करने पर मिलते हैं।

(३) भ्रूण-गढ़न की तुलना से मिले प्रमाण ।

मां के पेट में रहते समय किसी जीव के आकार-प्रकार में धीरे-धीरे जो परिवर्तन होते रहते हैं, उन्हें देखकर उस जीव के पिछले इतिहास को समझा जाता

है श्रौर दूसरे जीवों के साथ उसके संपर्क का भी पता लगता है।

श्रब ज़रा पहले प्रमाण की जांच करके देखी जाय।

धरती की तहों की जांच करने पर देखा गया है कि जगह-जगह धरती ऐसी है मानो तह पर तह सजा कर रखी गयी हो। साल-दर-साल नदियां नीची ज़मीन पर या समुद्र के तल पर एक-एक तह पांकी-मिट्टी जमाती जाती हैं। धीरे-धीरे ऊपरवाली तहें क्रमशः भारी होती जाती हैं, श्रौर नीचेवाली तहों के ऊपर दबाव बढ़ता जाता है। दबाव से नीचे की तहें सख़्त पत्थरों का रूप धारणकर लेती हैं। जब तक तहें नरम रहती हैं, तब तक उनके ऊपर नाना प्रकार के जीव-जंतुश्रों श्रौर पेड़-पौधों के निशान पड़ते हैं। निशान डालनेवाले इन जीव-जंतुश्रों श्रौर पेड़-पौधों के पथराये रूपों को ही फ़ॉसिल कहते हैं। वैज्ञानिकों ने मिट्टी की तहें खोद-खोदकर ऐसे श्रनेक फ़ॉसिल बाहर निकाले हैं।

ये फ़ॉसिल ही हमें बताते हैं कि धरती पर किस समय किस-किस जाति के जीव रहते थे।

पथरायी ठठरियों के प्रमाणों से डारविन के सिद्धान्तों को समझने के लिए भूतत्व-विद्या की कुछ बातों को जानना ख़ास तौर से ज़रूरी है।

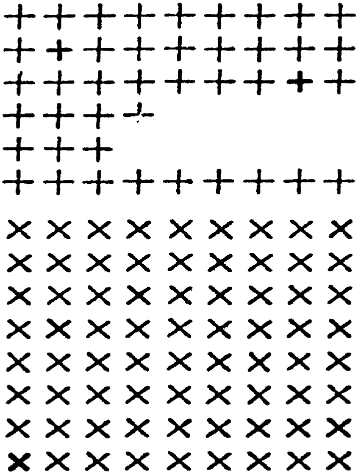
हमारी इस धरती का जन्म आज से करोड़ों बरस पहले हुआ था। धरती के जन्म के साथ ही उसकी गोद में प्राणियों या उद्भिदों का जन्म नहीं हुआ था। उनके पैदा होने से बहुत पहले ही धरती न जाने कितनी उम्र काट चुकी थी।

पहले-पहल जब प्राणियों का जन्म हुआ, उस दिन से लेकर मनुष्य जाति के प्रकट होने के दिन तक जो करोड़ों-करोड़ वर्ष बीते हैं, उन्हें भूतत्व के पंडितों ने पांच महायुगों में बांट रखा है——मानों वे किसी मोटे ग्रंथ के पांच खंड हों। ज़रा सा रटकर कंठस्थ कर लेने पर इन महायुगों के नाम याद हो जायेंगे। नाम अगले पन्ने में दिये हुए हैं। इन्हें पन्ने के नीचे से पढ़ते हुए ऊपर की ओर बढ़ना होगा।

आर्कियोज़ोइक और प्रोटेरोज़ोइक——इन दो प्रथम महायुगोंवाली धरती की तहों से ज्यादा ठठरियां (फ़ॉसिल) नहीं मिलतीं। क्यों? इसलिए कि इन दो महायुगों में भयानक भूकम्पों और अग्नि-उत्पातों ने धरती की सतहों को इतना उलट-पुलट दिया था कि तमाम पथरायी ठठरियां बरबाद हो गयीं। फिर भी उनमें से जो पायी गयी हैं, वे सभी सीधे-सादे समुद्री जानवरों की हैं। वे केवल एक सेल (जीव-कोषवाले)

सेनोज़ोइक
महायुग

↑



मेसोज़ोइक
महायुग

↑

पैलियोज़ोइक
महायुग

↑

प्रोटेरोज़ोइक
महायुग

आर्कियोज़ोइक
महायुग

ऐमिबा जातीय प्राणियों की, छोटे-छोटे समुद्री कीड़ों-मकोड़ों की और सिवार-जातीय वनस्पति की हैं। उनमें न डाल हैं न पात, सिर्फ़ एक हरियाली का पिंड भर है। इन दोनों महायुगों में किसी थलचर जीव या किसी स्थलवासी पेड़-पौधे की पथरायी ठठरी नहीं मिलती। उनको देखकर यह अनुमान लगाना ग़लत न होगा कि सूखी धरती पर उन दिनों तक जीवन का कोलाहल अभी जागा नहीं था।

इन पहले दो महायुगों में जीवों की तादाद भी कम थी और उनकी विविधता-विचित्रता भी कम थी। उनकी देह एक ही सेल की बनी या बहुत थोड़े-से सेलों (जीव-कोषों) की बनी होती थी।

तीसरे महायुग का नाम है, पैलियोज़ोइक। इस महायुग को छः युगों में बांटा गया है—ठीक वैसे ही, जैसे किसी ग्रंथ के एक ही खंड में कई-कई अध्याय होते हैं। इन छः युगों के नाम हैं : कैंब्रियन, ओर्डोविसियन, सिलूरियन, डैवोनियन, कार्बनिफ़ेरस और ट्रियासिक। धरती की कैंब्रियन युगवाली तहों से वैज्ञानिकों ने अनगिनत और विचित्र-विचित्र जलचर जीवों की पथरायी ठठरियों को निकाला है। सिर्फ़ एक तरह की ठठरी नहीं मिली। और वह है रीढ़दार जीवों की।

उसके बाद युग पर युग बीतते गये और जीवों की तादाद बढ़ती गयी। एक के बाद एक, जटिल से जटिलतर गढ़नवाले, जीव प्रकट होने लगे। पहले रीढ़दार जीव—मछलियों की जाति के—पैदा हुए। धीरे-धीरे अनेक जातियों के उद्‌भिदों से धरती भर उठी। पूरा कार्बनिफ़ेरस युग स्थलवासी पेड़-पौधों के आधिपत्य का युग है। सारी धरती घने जंगलों से ढंक गयी। लेकिन इन जंगलों में अभी फूलों की बहार के दर्शन नहीं हुये थे। फूलवाले पौधों के आने में अभी देर थी। ये ही पेड़-पौधे मिट्टी में दबकर बाद में कोयला बन गये। इसीलिए कार्बनिफ़ेरस युग को हम आसान बनाकर कोयला-युग भी कह सकते हैं।

मछली इससे पहले ही, सिलूरियन युग में, पैदा हो चुकी थी। इस महायुग के अंतिम युग, ट्रियासिक युग, के शुरू में ही पहला थलचर जीव, मेंढक पैदा हुआ। बेशक, मेंढक को पूरा-पूरा थलचर नहीं कहा जा सकता। वह जलचर भी है, और थलचर भी। अर्थात् उभयचर है। लेकिन पूरा-पूरा थलचर जीव भी उसी युग में पैदा हो गया। यह जीव था सरीसृप। ये आदिम सरीसृप छिपकली, गिरगिट वगैरा थे।

चौथे महायुग को (जिसका भूतात्विक नाम

मेसोज़ोइक महायुग है), सरीसृपों का युग कहा जा सकता है। इस युग के सरीसृप आजकल की छिपकलियों-गिरगिटों की तरह छोटे-मोटे निरीह जीव नहीं थे। उनके नाम जैसे जबड़ातोड़ हैं, रूप भी वैसे ही विकराल और दानवाकार थे। डाइनोसर, डिप्लोडोकस, ब्रांट्सरस आदि कुछ नाम इन्हीं दानव सरीसृपों के हैं। पूरे मेसोज़ोइक महायुग में इन विकट-आकार और अतिकाय सरीसृपों की ही इस पृथ्वी पर भरमार थी। इनमें से किसी-किसी की लम्बाई सौ-सौ फीट तो, वज़न हज़ार-हज़ार मन था।

इन्हीं सरीसृपों की एक शाखा अपने सामनेवाले दोनों पैंरों को आसमान में मिलाने की कोशिश करती-करती चिड़िया बन गयी। चिड़ियों में सबसे पुरानी जिस चिड़िया की पथरायी ठठरी का पता लगा है, उसका नाम है आरकियोप्टेरिक्स। उसका नाम जैसा ऊबड़-खाबड़ है, रूप भी वैसा ही अजीब था। सरीसृपों जैसी पूंछ, सरीसृपों के से दांत, मगर चिड़ियों की तरह नुकीली चोंच और चिड़ियों की तरह परोंवाले (प्रपक्षोंवाले) डैने होते थे उसके।

इस महायुग के शुरू-शुरू में ही स्तन्यपायी जीव प्रकट हुए। भला स्तन्यपायी क्या चीज़ है? पहली

बात तो यह है कि इस जाति के जीवों की देह में रोयें या बाल होते हैं। दूसरी बात यह है कि ये जीव अंडे नहीं देते, इनके पेट से बच्चे पैदा होते हैं। बच्चे मां का दूध पीकर जीते और बढ़ते हैं।

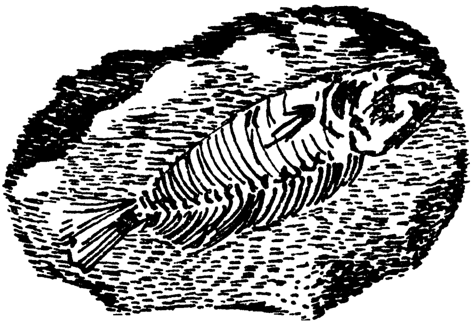
इस महायुग में फूलोंवाले पेड़-पौधे भी प्रकट हुए। इसके पहले पेड़-पौधों में फूल नहीं होते थे।

चौथा महायुग जब बीत चला और खतम होने को आया, तो अतिकाय सरीसृपों की हुकूमत का युग भी खतम होने को आया। ऐसा क्यों? ऐसा इसलिए कि जिस गरम और नम आबहवा में डाइनोसर बढ़े और इतने दानवाकार हो गये, वह आबहवा ही बदल गयी और धरती पर बरफ़ का युग आ गया।

सबसे आखिरी महायुग, यानी सेनोज़ोइक महा-युग को, हम स्तन्यपायी जीवों का महायुग कह सकते हैं। इस महायुग को पांच हिस्सों में बांटा गया है। इन पांच हिस्सों के नाम याद कर लेना ठीक रहेगा :

इयोसिन (Eocene)
ओलिगोसिन (Oligocene)
मियोसिन (Meocene)
प्लियोसिन (Pliocene)
प्लिस्टोसिन (Pleistocene)

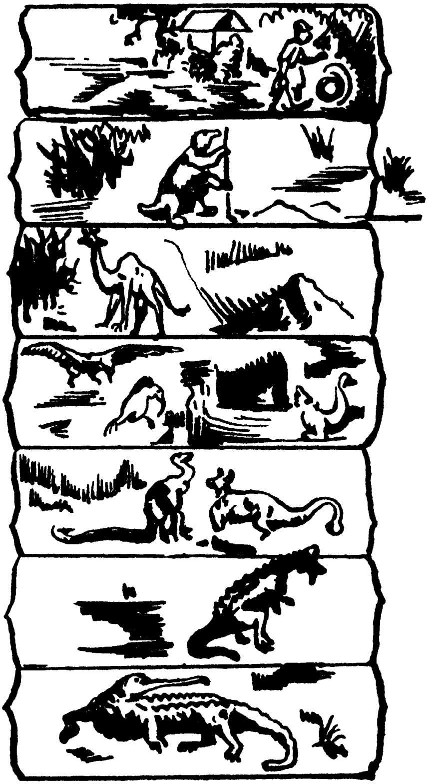
सेनोज़ोइक महायुग के आरम्भ काल से ही धरती पर स्तन्यपायी जीवों का प्रताप बढ़ना शुरू हो गया था। धरती पर नाना जातियों के स्तन्यपायी जीव जन्म ले चुके थे और अपने-अपने वंश को बढ़ाने में लगे थे। इतनी तेज़ी के साथ उनके फैलने के तीन कारण हैं। एक तो यह कि उनके शरीर का रक्त गरम होता है। दूसरा यह कि उनके शरीर के ऊपर घना रोआं होता है, जिससे वे काटती सरदी भी सह सकते हैं, उसके शिकार नहीं बन पाते। तीसरा यह कि वे अंडे नहीं देते, बच्चे देते हैं। अंडे जितने बरबाद होते हैं, उतने बच्चे बरबाद नहीं हो पाते। अपने विकसित शरीर को लेकर वे प्रकृति का सामना ज़्यादा डटकर कर सकते हैं।



एक मछली की पथरायी ठठरी



जीवन के क्रमिक विकास की
कहानी के पहले सात अध्याय
(नीचे से ऊपर की ओर)



बाकी सात अध्याय
(क्रमिक विकास की
चोटी पर मनुष्य है)

इसी महायुग के शुरू के दिनों में जीवों में सबसे बुद्धिमान जीव, बंदर, भी प्रकट हुआ। बंदर की जाति से ही आज से सिर्फ़ तीन-चार लाख साल पहले प्लिस्टोसिन युग में, मनुष्य-जाति का जन्म हुआ।

धरती की सबसे निचली तह की पथरायी ठठरियों से लेकर सबसे ऊपरी तह की पथरायी ठठरियों तक सभी को अगर सिलसिलेवार रखा जाय तो पृथ्वी के जीवों के क्रमिक विकास की एक बहुत साफ़ तसवीर उभर आयेगी। वह तसवीर कुछ इस तरह की होगी :

## *पहले दो महायुग : आदिम प्राण (जीवन)*

ये जीव सीधे-सादे ढंग के थे। जो जीव इस दुनिया में सबसे पहले प्रकट हुए उनमें केवल एक ही सेल या जीव-कोष होता है। उनके बाद जो जीव दुनिया में आये, उनमें कुछेक सेल या जीव-कोष होते हैं। ये जीव समुद्र के पानी में बसते हैं। इनकी देह लिजलिजी होती है। शरीर में कोई हड्डी नहीं होती। इसलिए उनकी पथरायी ठठरियों का मिलना बहुत मुश्किल है।

पेड़-पौधों के राज्य में भी पहले सीधे-सादे ढंग की वनस्पति से ही सृष्टि के क्रम की शुरूआत हुई। पहले-पहले संवार, कुकुरमुत्ते आदि की जातियों के घास-पात और पौधे प्रकट हुए। इस घास-पात में और इन पेड़-पौधौं में न फूल होते हैं, न बीज।

## तीसरा महायुग : विचित्रता और प्रचुरता

जीव-जगत में समेरुक या रीढ़दार प्राणियों के सिवा और सभी प्राणियों का जन्म इस महायुग में हो चुका था। समुद्र के पानी में उन दिनों ट्राइलो-बाइट नाम की एक जाति के जलजंतुओं का ख़ूब दबदबा था। उसके बाद पहले रीढ़दार जीव का जन्म हुआ। देखने में ये जीव किसी डाक्टर की छुरियों की तरह लगते थे। पूरी रीढ़ उनमें अभी नहीं तैयार हो पायी थी। जहां रीढ़ होनी चाहिए थी, वहां रबड़ की तरह नरम हड्डी जैसे एक पदार्थ की माला होती थी। मछली से ये जीव वहुत मिलते-जुलते थे। इन्हीं से विकसित हुई मछली। और मछली से आगे क्रमशः

बढ़ते हुए——उभयचर मेंढक। और मेंढकों से बढ़ते-बढ़ते फिर सरीसृप पैदा हुए।

वनस्पति जगत में भी पहले पानी से निकलकर सूखे में आने की कोशिश हुई। फिर थल-सेंवार (काई) और कुकुरमुत्तों की जाति के अपुष्पक (बिना फूलों-वाले) स्थलवासी पौधे पैदा हुए। उनमें फूल नहीं खिलते थे, फल नहीं लगते थे और बीज, पत्तों के ऊपर ही, बेपर्द पैदा होते थे। उन दिनों फर्न-जातीय पौधों की, अपुष्पक वनस्पिति की, बहुतायत थी। अब कोयला-युग आया।

## चौथा महायुग : डाइनोसरों का प्रताप

जीव-जगत में सरीसृपों के वंश बढ़े। डाइनोसरों का प्रताप बहुत तेज था। सरीसृपों की एक शाखा ने आसमान में उड़ना सीख लिया था। ये उड़ाकू सरीसृप ही चिड़ियों के पुरखे थे। फिर स्तन्यपायी आये। इनके शरीर में खूब घना रोआं होता है। ये अंडे नहीं देते। इनके पेट से बच्चे पैदा होते हैं। डाइनोसर हटे तो स्तन्यपायियों की तादाद बढ़ी।

वनस्पति जगत में सपुष्पक (फूलोंवाले) पौधे

पैदा हुए। इनमें फूल खिलते हैं। बीज नंगे, बेपर्द, नहीं होते, ढंके रहते हैं। फूल से फल लगते हैं। इन फूलवाले पौधों की बहुतायत और मुख्यता कायम हुई।

## *पांचवां महायुग : जिसकी अक्ल उसकी दुनिया*

स्तन्यपायियों की तादाद बढ़ती गयी। अनेक जातियों के स्तन्यपायी पैदा हुए। सबसे बुद्धिमान स्तन्यपायी हुए बंदर। इन बंदरों की ही एक सबसे बुद्धिमान शाखा से—आधुनिक प्लिस्टोसिन युग में—मनुष्य ने जन्म लिया।

डारविन ने कहा था कि : "एकदम साधारण से श्रीगणेश करके सुंदर से सुंदर और अद्भुत से अद्भुत अनगिनत रूप क्रम-क्रम से विकसित होते गये।" पत्थरों पर उभरी इन तसवीरों के पीछे-पीछे क्रमिक विकास की जो धारा हमें मिलती है, उससे हम इसी नतीजे पर पहुंचते हैं कि डारविन की बात का एक-एक अक्षर सच है।

"आदमी का अवतार" ("डिसेंट ऑफ़ मैन") नाम

की अपनी किताब में डारविन ने यह सिद्ध किया है कि किस तरह वनमानुषों की ही एक शाखा बदलते-बदलते मनुष्य बन गयी। लेकिन सिर्फ मनुष्य ही क्यों? आज हमें गैंडे, हाथी, ऊंट और घोड़ों की जो असंख्य पथरायी-ठठरियां मिलती हैं, उन्हें निचले स्तरों से ऊपरी स्तरों की ओर सिलसिलेवार सजाकर रख दीजिये तो आप साफ़-साफ़ समझ लेंगे कि बहुत पहले वे कुछ और ही तरह के होते थे बाद में वदलते-बदलते ही उन्होंने अपना वर्तमान रूप धारण किया।

मिसाल के लिए घोड़े को ले लिया जाय। घोड़े की जातिवाला पहले का जानवर शुरू से ही आज की तरह एक-खुरवाला, लंबे पैरों और लंबी गरदनवाला स्तन्यपायी नहीं था। उसके दांत भी आज की तरह फांकदार और मज़बूत नहीं होते थे। घोड़े के पुरखे देखने में लोमड़ी की तरह होते थे। लम्बाई बहुत हुई तो एक फुट। अगले पैरों में चार-चार और पिछले पैरों में तीन-तीन खुर। आज-कल के घोड़े के पैर का निचला हिस्सा एक ही हड्डी का बना होता है। लेकिन उसके पुरखे के पैर के निचले हिस्से में दो-दो हड्डियां होती थीं। उस अजीब घोड़े का नाम था—योहिपस।

उसके बाद क्या तब्दीलियां हुईं?

उसके बाद चारों पैरों में तीन-तीन खुर रह गये। बीचवाले खुर आकार में बड़े होते थे। इसलिए शरीर का बोझ उन्हीं को ढोना पड़ता था। लेकिन चलते वक्त किनारेवाले खुर भी धरती को छूते थे। दांतों की फांकें, जो पहले साफ़ नहीं थीं, अब साफ़ नज़र आने लगीं। फांकें होने से घास-पुआल वगैरा चबाने में सहूलियत हो गयी। इस जाति के घोड़ों का नाम था, मेसोहिपस।

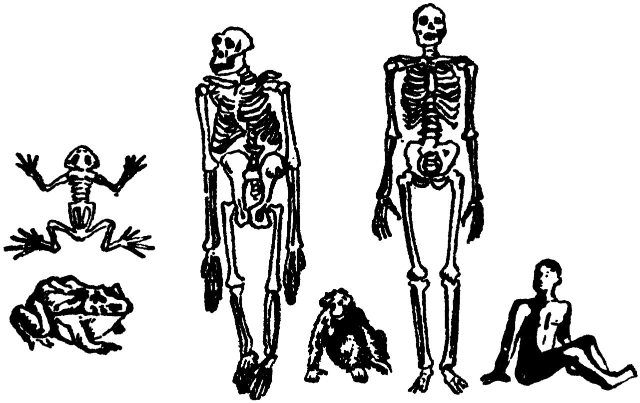
उसके बाद ?

उसके बाद छोटे खुर धीरे-धीरे इतने छोटे हो गये कि मिट्टी भी न छू पाते। पैर की दोनों निचली हड्डियां मिलकर एक हो गयीं। आज-कल के घोड़े से यह जानवर बहुत-कुछ मिलता-जुलता था; सिर्फ़ चेहरा छोटा था। इस जाति के जानवर प्रोटोहिपस कहलाते थे। प्रोटोहिपस ही आज-कल के घोड़े बन गये हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि घोड़े की सृष्टि एक ही बार में नहीं हुई।

आदमी की सृष्टि भी एक बार में नहीं हुई। रीढ़दार जीवों की सबसे ऊपरी पैड़ी पर है आदमी। सबसे निचली पैड़ी पर है मछली। अवस्थाओं के हेर-फेर से मछली ही मेंढक बन गयी। मेंढकों की एक

लोप हो गये अंग यह बता देते हैं कि आज भले ही उन अंगों के चिह्न मात्र ही बच रहे हों, लेकिन एक दिन ऐसा भी था जब ये अंग पूर्ण विकसित रूप में मौजूद थे और काम में आते थे। आज जिन जंतुओं के शरीर से उन अंगों का लोप हो गया है, वे जंतु उन जंतुओं के वंशधर हैं जिनके शरीर में किसी ज़माने में ये अंग भी मौजूद थे, और लोप नहीं हुए थे।



मेंढक, गुरिल्ला और आदमी के कंकालों की गठन में कोई विशेष अन्तर नहीं दीखता। सामने की तसवीर में यह देखा जा सकता है कि चार तरह के जानवरों की हड्डियों के ढांचे बहुत कुछ एक-जैसे हैं।

पैदा होने के पहले की अवस्थाओं में मछली, मुर्गी या बन्दर के बच्चों से आदमी के बच्चों की गढ़न में

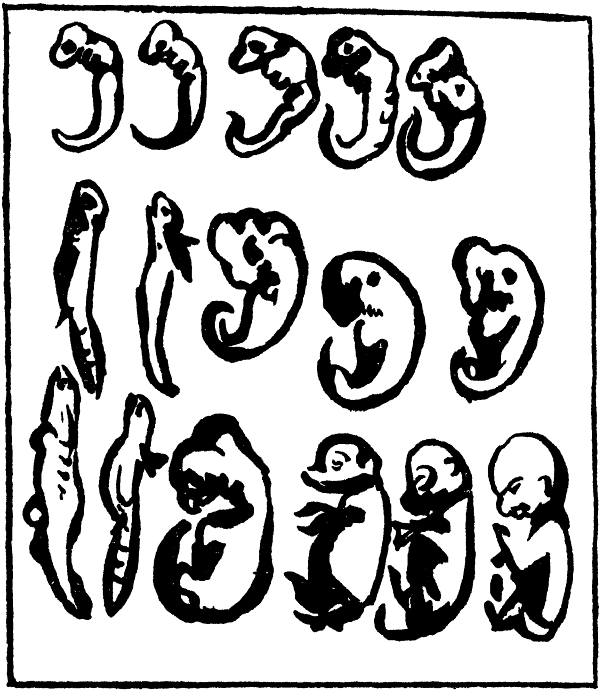


कोई ज्यादा अन्तर नही होता। इससे क्या सिद्ध होता है ?

अब तीसरे प्रमाण को भी समझ लिया जाय।

जीव जब मां के पेट में होते हैं, भ्रूण (गर्भावस्था) के रूप में रहते हैं। उस समय की अवस्था के चार जातियों के भ्रूणों (गर्भ के बच्चों) को आसपास सजाकर रख दिया जाय तो बताना कठिन होगा कि कौन सा भ्रूण किस जंतु का है, कि किस भ्रूण से मछली पैदा होगी, किससे मुर्ग़ी, किससे बंदर और किससे आदमी। शुरू में तो देखने में वे बहुत समान रूप लगते हैं। जिन लोगों ने आदमी के गर्भ-रूपों की जांच-पड़ताल की है, उन्होंने देखा है कि शुरू-शुरू में आदमी का हृदय-यंत्र भी मछली की तरह ही दो

भागों में बंटा रहता है। उसके बाद वही हृदय-यंत्र मेंढक की तरह तीन भागों में बंट जाता है। सरीसृपों के हृदय-तंत्र भी इसी तरह से बंटते हैं। मछली के



कनखुरों-कल्लों के भीतर जिस तरह का गढ़ा होता है, वैसा ही गढ़ा आदमी के गर्भ-रूप के कंधों के दोनों ओर भी देखा जा सकता है। यह सब-कुछ दूसरे स्तन्यपायी जंतुओं के गर्भ-रूपों में भी पाया जाता है। इन सारी बातों से क्या साबित होता है?

इन बातों से साबित होता है यह कि सूखी धरती पर विचरनेवाले स्तन्यपायी कभी पानी में बसनेवाले जीव थे; या, इसी बात को यों कह सकते हैं कि जल-चरों की एक शाखा क्रमशः बदलते-बदलते एक दिन सूखी धरती पर चलनेवाले स्तन्यपायी जंतुओं की जाति बन गयी।

इन कुछेक पन्नों के अंदर डारविन के क्रमिक-विकासवाले सिद्धांत की चर्चा बहुत संक्षेप में की गयी है। मोटा-मोटी तौर पर क्या बात तय पायो गयी ?

पृथ्वी में परिवर्तन होते हैं, हुए हैं और हो रहे हैं। पृथ्वी-निवासी जीव-जंतुओं और पेड़-पौधों में परिवर्तन होते हैं। पहले भी हुए हैं, आज भी हो रहे हैं और आगे भी होते रहेंगे। कारण यह कि जीवन का स्वभाव ही है बदलते रहना।

आदिम युग में कुछ सीधे-सादे ढंग के जीव और कुछ सीधे-सादे ढंग से उद्भिद ही थे। बदलते-बदलते वे जटिल हो गये। क्रमशः नये-नये गुण और अलग-अलग विशेषताएं हासिल करके बहुतर, विचित्रतर और उन्नततर जीव और पेड़-पौधे इस पृथ्वी पर प्रकट होते गये। इस उन्नति की सबसे ऊंची चोटी पर जो जीव है, वह है मनुष्य।

# नौ

डारविन बता गये हैं कि परिवर्तन ही प्रकृति का नियम है ।

उनसे यदि हम यह सवाल पूछते कि:

युगों-युगों तक थोड़ा-थोड़ा करके पक्रति जीव-देहों में जो परिवर्तन ले आयी है, जिन गुणों को विकसित किया है, उन परिवर्तनों को मनुष्य पयत्न करके ला सकता है या नहीं ? उन गुणों को विकसित कर सकता है या नहीं ?

क्या जवाब देते वह ? वह कहते कि जीवों के शरीर के अंदर जो भेद आते हैं, जो विशेषताएं जाहिर होती हैं, जिनके बूते पर जीव जीवित रह पाने के संघर्ष में विजयी होते हैं, जिनसे जीव-देहों के नये-नये रूप गठित होते हैं—ये सब अकस्मात ही होते हैं, संयोग से ही होते हैं, इनके कारण जाने नहीं जा सकते । यही है डारविन के सिद्धांत की कमज़ोरी ।

लेकिन इस कमज़ोरी को बताने का यह मतलब हरगिज नहीं कि हम डारविन की चिरस्मरणीय कीर्ति को रत्ती भर भी कम करके देखने की कोशिश कर रहे हैं। मनुष्य के ज्ञान के भंडार में वह जो कुछ दे गये हैं, उसका मोल हम कभी भी नहीं चुका पायेंगे !

विज्ञान की सिर्फ़ एक शाखा में ही नहीं — जीव-विद्या या 'बायोलौजी' के क्षेत्र में ही नहीं — मनुष्य के पूरे चिंतन-जगत में डारविन एक प्रचंड उथल-पुथल शुरू कर गये हैं। दर्शन-चिंतन में, समाजशास्त्रीय-चिंतन में और अर्थनीतिक-चिंतन में भी डारविन एक आंधी सी उठा गये हैं। उस आंधी में पुरानी गलत-सलत धारणाएं सड़े पत्तों की तरह उड़ गयीं। मनुष्य सत्य को पहचानने का रास्ता देखने लगा, विज्ञान के सत्य को, जीवन के सत्य को पहचानने का रास्ता। उस सत्य को पहचानने का, जिसे पहचानकर मनुष्य और भी बड़ा हो सकेगा।

लेकिन हमारे सवाल का क्या हुआ ? वह तो रह ही गया।

लो, उस सवाल का जवाब भी मिल गया। कागज़ी जवाब नहीं। बिलकुल सच्चा जवाब।

जवाब क्या है ? क्या कोई ऐसा जवाब है जिसे

सुनकर मनुष्य कहलाने में हमारी छाती गर्व से फूल उठेगी ?

हां, गर्व करने की बात ज़रूर है। जिन्होंने जवाब दिया, उन्होंने कहा कि :

> हम इस आशा में प्रकृति का मुंह ताकते नहीं रह सकते कि प्रकृति हमें देगी। हमें तो, जो हम चाहते हैं, वह प्रकृति के हाथों से छीनना होगा।

प्रकृति के हाथों से छीनना होगा। अर्थात् प्रकृति में जो नहीं है, वह लाना होगा ? कैसे ? किस बूते पर ?

अगर हम यह समझ सकें कि प्रकृति में जो प्रकार-भेद होते हैं, उनका कारण क्या है, कि जो अंतर आते रहते हैं वे ठीक किस तरह से आते हैं—जो डारविन समझा नहीं सके—तो हम छीन ले सकते हैं, प्रकृति में जो डारविन समझा नहीं सके,—तो हम छीन ले सकते हैं; प्रकृति में जो कुछ बहुत धीरे-धीरे होता है, उसे दो-चार या दस-पांच बरसों में ही घटित कर सकते हैं।

परिवर्तन के कारण क्या हैं ?

कारण है चहुं ओर की अवस्था। वातावरण। वातावरण के साथ जीव-देह का घनिष्ट सम्बंध रहता

है। वह अपने को ठोंक-पीटकर अपने को वातावरण के अनुकूल बना लिया करती है। ऐसा न करे तो उसके पास और चारा ही क्या है। अपने वातावरण के अंदर से ही तो वह अपने जीते रहने के लिए, अपने पोषण के लिए, सामग्री जुटाती है! वातावरण उसे जो-जो सामग्रियां, जो-जो उपकरण देता है, वह उन्हीं को लेकर तो जियेगी न?

मान लिया कि एक उद्भिद है। उसका वातावरण क्या होता है? ज़मीन की गढ़न, ज़मीन और हवा का तापमान, हवा में कारबन-डायक्साइड की मौजूदगी, हवा के बहने की गति और रोशनी। ये ही वे चीज़ें हैं, जिन्हें मिलाकर उसका वातावरण बनता है।

एक उदाहरण से इस बात को अच्छी तरह समझ लिया जाय।

भारत में रुई पैदा होती है। लेकिन इस रुई के तार होते हैं छोटे। छोटे तार से उमदा कपड़े नहीं बनते। उमदा कपड़े बनाने के लिए विदेशों से लम्बे तार की रुई का आयात करना पड़ता है।

अब अगर भारत में वनस्पिति-शास्त्र का कोई पंडित कहे कि मैं देश के इस चिंतनीय अभाव को

दूर कर दूंगा, भारत में लम्बे तार की रुई की फसल उगाऊंगा, तो क्या हो ? पांच सौ बरस पहले ऐसा कहने वाले को शायद पागलखाने की हवा खानी पड़ती, या धर्मद्रोही ठहरा कर नज़रबंद कर दिया जाता।

लेकिन आज ? आज उसकी बात सुनकर सभी धन्य-धन्य कह उठेंगे। उसे देश का सपूत मानकर उस पर श्रद्धा के फूल चढ़ायेंगे।

यह कैसे संभव होगा ? पहले यह समझ लेना होगा कि बड़े तार की रुई के लिए वातावरण कैसा चाहिए। वैसा वातावरण तैयार करते ही धीर-धीरे कुछ बरसों में भारत में बड़े तार की रुई पैदा की जाने लगेगी।

यह चंडूखाने की गप्प नहीं है। एक आदमी ने साठ साल तक अविश्वासियों की आंखों में उंगली डाल-डालकर एक-एक बात सिद्ध कर दी है। वह तो आज नहीं रहे, लेकिन उनके शिष्य इस बात को अनाज के खेतों और फलों के बड़े-बड़े उद्यानों में रोज प्रमाणित कर रहे हैं।

जहां कभी अनाज नहीं उगा, उन बरफीले देशों में वे गरम देशों के अच्छी जाति के गेहूँ उगा रहे हैं।

जहां कभी चाय नहीं हुई, और न कभी किसी को यह विश्वास हो सकता था कि वहां चाय हो सकती है, उन जगहों में उन्होंने चाय के बागान खड़े कर दिये हैं।

मनुष्य अब बैठा-बैठा प्रकृति का मुंह नहीं देखता रह सकेगा। मनुष्य प्रकृति के हाथ से जो चाहेगा, छीन लेगा।

❀ ❀ ❀

डारविन की कहानी कहने के लिए जितने पन्ने नियत थे, उनका यही आखिरी पन्ना है

डारविन की कहानी खतम करने से पहले हम सिर्फ़ उस आदमी का नाम बता देना चाहते हैं, जिसके कामों से डारविन अमर हो उठे हैं—

, नाम है मिचुरिन।

. ग्रादिमिरोविच मिचुरिन।

# संक्षिप्त तिथि-पत्रिका

चार्ल्स डारविन। रॉबर्ट वारिंग डारविन के द्वितीय पुत्र।

जन्म : १२ फ़रवरी, १८०९।

जन्मस्थान : श्रुसबेरी, इंगलैंड।

१८२५ : डाक्टरी पढ़ने के लिए एडिनबरा विश्वविद्यालय में दाखिल हुए।

१८२८ : पादरी बनने के लिए कैंब्रिज विश्वविद्यालय में दाखिल हुए।

दिसम्बर १८३१ से अक्तूबर १८३६ : 'बिगुल' नामक जहाज़ पर विश्व-पर्यटन।

१८३८-१८४१ : तीन साल तक जियॉलॉजिकल सोसायटी के मंत्री।

१८३९ : विवाह।

: फ़िट्ज़रॉय के साथ मिलकर "जरनल आफ़ रिसर्चेज़" (शोध-पत्रिका) का प्रकाशन।

१८४४ : आग्नेय द्वीप सम्बंधी पुस्तक का प्रकाशन।

१८४५ : "जरनल ऑफ़ रिसर्चेज़" का दूसरा संस्करण स्वतंत्र रूप से प्रकाशित करने लगे।

१८४६ : "दक्षिणी अमरीका का भूतात्त्विक पर्यवेक्षण" नाम की पुस्तक प्रकाशित।

१८५४ : सेरिपिड नामक समुद्री जीव सम्बन्धी पुस्तक प्रकाशित।

१८५९ : "ओरिजिन ऑफ़ स्पिशीज़" का प्रकाशन।

१८६२ : "फ़र्टिलाइज़ेशन ऑफ़ ऑरकिड्स" का प्रकाशन।

१८६८ : "वैरियेशन ऑफ़ एनिमल्स ऐंड प्लांट्स अंडर डोमेस्टिकेशन" का प्रकाशन।

१८७१ : "डिसेंट ऑफ़ मैन" (आदमी का अवतार) का प्रकाशन।

१८७२ : "एक्सप्रेशन ऑफ़ इमोशन इन मेन ऐंड एनिमल्स" का प्रकाशन।

१८७५ : "इनसेक्टिवोरस प्लांट्स" (कीटभोजी पौधे) का प्रकाशन।

१८७७ : "डिफ़रेंट फ़ार्म्स ऑफ़ फ्लावर्स" (फूल के विविध रूप) का प्रकाशन।

१८७९ : "लाइफ़ ऑफ़ इराज़मस डारविन" (इराज़मस डारविन की जीवनी) का प्रकाशन।

१८८० : "पावर ऑफ़ मूवमेंट इन प्लांट्स्" (पौधों में गति-शक्ति) का प्रकाशन।

डारविन के पांच बेटे और दो बेटियां थीं। बेटों में सर जॉर्ज हावर्ड ज्योतिर्विज्ञानी और सर फ्रांसिस उद्भिद-विज्ञानी के रूप में विख्यात हुए।

मृत्यु : १९ अप्रैल, १८८२।